आलोचना

त्रैमासिक

सहस्राब्दी अंक

58

राजकमल प्रकाशन समूह

सहस्राब्दी अंक *अट्ठावन*
अप्रैल-जून 2016

यह अंक : ₹60
व्यक्तिगत सदस्यों के लिए
वार्षिक सदस्यता : ₹300

संस्थाओं के लिए
वार्षिक सदस्यता : ₹500

कृपया अपना शुल्क
राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली
के नाम से मनीऑर्डर/ड्राफ्ट द्वारा भिजवाएँ।

_आलोचना_ में प्रकाशित रचनाओं के साथ राजकमल प्रकाशन प्रा.लि. या संपादकों की सहमति होना आवश्यक नहीं है।

प्रकाशन के लिए सामग्री दो पंक्ति छोड़कर (डबल स्पेस में) साफ टाइप की हुई होनी चाहिए और निम्न पते पर ही भेजी जानी चाहिए :

संपादक, आलोचना
1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज
नई दिल्ली-110 002
दूरभाष : 011-23274463, 23288769

सम्पादन-अवैतनिक

AALOCHANA
A Quarterly Journal in Hindi
Published by Rajkamal Prakashan (P) Ltd.
1-B, Netaji Subhash Marg, Daryaganj, New Delhi-110 002 (INDIA)
Phone : 011-23274463, 23288769 *Fax : 011-23278144*
website : www.rajkamalprakashan.com • *e-mail : info@rajkamalprakashan.com*

Subscriptions
In other countries
US $ 21/£ 17 *(via air mail)*
US $ 12/£ 10 *(via sea mail)*

आलोचना
त्रैमासिक

राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-110 002

'अज्ञात' हिंदू स्त्री कैसे बनती है?

चारु सिंह

ग़ज़ल

या खुदाया कर ख़ताएँ माफ़ सारी इन दिनों।
कर फ़जल से अपने सब पर फज़्ल बारी इन दिनों॥
चल रही है हिंद में बादे बहारी इन दिनों।
हम पै वोही क़हर जो था पहिले भारी इन दिनों॥
हो गईं एकदम से सब बेवा बिचारी इन दिनों।
पर न कोई नज़र आया ग़मग़ुसारी इन दिनों॥
ज़ुल्म का ख़ंजर लगा है दिलपै कारी इन दिनों।
ज़ख़्म की सूरत है खूं आँखों से जारी इन दिनों॥
ज़ेहल के आज़ार ने लाग़िर किया है इस क़दर।
शकल पहिचानी नहीं जाती हमारी इन दिनों॥
जिंस इंसां से बदल कर हो गई हालत सिनां।
क्या ही सूरत हो गई है कारी कारी इन दिनों॥
बाप शौहर बेटा भाई ग़रज़ सब इस क़ैद में।
हमपै लाते हैं मुसीबत बारी बारी इन दिनों॥
शक के हाथों से बहुत तंग होके घर से निकलकर।
फ़िरती है हर एक औरत मारी मारी इन दिनों॥
परदों के फ़ैलों से हरदम तो जलाना फ़र्ज़ है।
करती है हर एक ज़ुलमपै जां निसारी इन दिनों॥
बे इलम बेघर चिरा के बेज़बां सब हो गईं।
दिल में सब के छा रही तारी की भारी इन दिनों॥
कर मिहर इस बेज़बांपै वरना होती हैं तमाम।
हाथ से रखली है सीने पर कटारी इन दिनों॥[1]

यह ग़ज़ल 1881 में पश्चिमोत्तर प्रांत की एक विधवा हिंदू युवती ने लिखी थी। 'स्त्री विलाप' नाम की इस किताब में अपना परिचय यह युवती ''गड़बड़ स्मृति बुढ़िया पुराण से बग़ैर मरजी ज़बरदस्ती का विवाह'' के हाथों ''सताई हुई एक महा दुःखित विधवा'' के रूप में देती है। हिंदी में 'भारतेंदु युग' के नाम से प्रसिद्ध यह वह दौर था जब नागरी हिंदी अपनी शुरुआती शक्ल ही अख़्तियार कर रही थी। इसके अगले ही वर्ष 1882 में इसी विधवा युवती की लिखी 'सीमंतनी उपदेश' पुस्तक में एक बार फिर भारतेंदुयुगीन स्त्री ने अपने न्याय की गुहार लगाई :

> ''हे अंतर्यामी परमेश्वर, हमारे अपराधों को क्षमा कर क्योंकि हम बग़ैर जाने अपराध के अपराध करती हैं। अब क्षमा कर के हमें भी वह ताक़त दे जिससे हम इस जहालत और ज़ुल्म की तारीकी से निकल के दुनिया का कुछ तमाशा देखें।
>
> ....
>
> बस, अब हमारा इस दुनिया में कोई नहीं। हमारी भी तू रक्षा कर कि हम सिवाय चार दिवारी मकान के और कुछ नहीं देखतीं, और हम चाहे इसी को

चारु सिंह दिल्ली विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में शोधार्थी हैं।

तमाम दुनिया ख़्याल करें, चाहे इसी को हिंदुस्तान समझें। इसी जेलखाने में पैदा हुई हैं और इसी में मर जाएँगी।

हे जगतपिता क्या तूने हमको पैदा नहीं किया क्या हमारा पैदा करनेवाला कोई और खुदा है लोगों ने तेरा नाम मरद क़रार दिया इसलिए तू भी हिंदियों की तरह बेरहम बन गया है अगर तुजको हमारी यही हालत मनजुर थी तो हमारी पैदायस किसी और तरह से करता जिससे हमको भी तसल्ली होती और मजलूमों की फ़रियाद तो दुनिया की अदालत में भी सुनी जाती है क्या तूने हम मजलूमों के लश्कर को देखकर अपनी अदालत का दरवाज़ा बंद कर लिया है?

हे परमात्मा, अपने दया सिंधु नाम का ख़्याल कर के हम पर दया कर क्या तेरी दया का समुद्र हमारे जले दिल की आहों से सूख गया है या हिंदियों की जुल्म की आग से जले दिल को जिस अमृत से तू ठंडा करता है, क्या वहाँ भी हमारा हिस्सा हिंदियों ने चुरा लिया है हे करुणामय पिता, निकालो हमको हम जहालत के अंधेरे कुवे में जालमों के हाथ से गिरी अनाथ की मानिंद पुकार रही हैं। हे प्रभू हमारी इस फ़रियाद को भी सुन के बजाय निकालने के और गहरे में डुबो देते हैं अब हममें इस क़दर सख़्याँ उठाने की ताक़त नहीं है। हम में से कईयों ने इसी जुल्म से बचने को अपनी आत्मा का घात किया है और कर रही हैं।''[2]

अब ख़ुदा ने इस औरत की फ़रियाद सुनी हो तो पता नहीं लेकिन हिंदी के लोकवृत्त में यह पुकार अनसुनी ही रही और इनकी लेखिका श्रीमती हरदेवी अज्ञात।[3] जैसा कि लेखिका ख़ुद लिखती हैं, ''हमने इस हिंदुस्तान में चारों तरफ़ पुकार-पुकार और रो-रो के हरेक के सामने फ़रियाद की, लेकिन किसी ने हमारे बावेले पर कान ना धरे, न पलक उठा के देखा।'' लेकिन कुछ तो बात ज़रूर थी इस लेखनी में जो नाम 'अज्ञात' होकर भी यह लेखन वजूद में बना रहा और जब-तब हिंदी के पाठक को यह प्रश्न पूछने के लिए उद्वेलित करता रहा कि यह लेखिका 'अज्ञात' कैसे बन गई? किसी ने अज्ञात होना लेखिका की विवशता मानी, तो किसी ने पितृसत्ता से समझौता। पर किसी ने इस 'अज्ञात' नाम की पहचान को दूसरों द्वारा थोपा हुआ नहीं माना। 1881 में 'स्त्री विलाप' के छपने से लेकर 1930 के सविनय अवज्ञा आंदोलन तक सार्वजनिक जीवन में सक्रिय इस लेखिका का अज्ञात बने रहना क्या विस्मय में नहीं डालता? आख़िर वह कौन सी संरचना है जो अपने समय की एक जानी-मानी लेखिका तथा सुधारक को 'अज्ञात' बना देती है?

यह संरचना हिंदी साहित्य के इतिहास की पितृसत्तात्मक गढ़न में निहित है। इतिहास हमेशा से ही 'वर्चस्व' का सबसे कारगर हथियार रहा है। किसी समुदाय या जाति के अनवरत शोषण को सुनिश्चित करने के लिए उसका इतिहास मिटाना बहुत ज़रूरी होता है। चेतना और स्वाभिमान से हीन होते ही वह समूह, ख़ुद ही विजेता समुदाय की ग़ुलामी को अपना धर्म समझने लगता है। पितृसत्ता ने पूरी दुनिया में वर्चस्व के इसी औज़ार का सहारा लिया है।[4] अन्यथा, यह संयोग नहीं है कि सारी दुनिया का मिथकीय इतिहास दो ही तरह की स्त्रियों में बँटा हुआ है—'देवी' या 'राक्षसी'। 'देवी', जो पितृसत्ता द्वारा एक स्त्री से अपेक्षित हर प्रतिमान पर खरी उतरे। जो एक कठिन माँग है, क्योंकि पितृसत्ता की अपेक्षाएँ इतनी अधिक हैं कि किसी स्त्री द्वारा उन्हें पूरा करना सम्भव नहीं लगता। सीता की तरह अग्नि परीक्षा देना या सावित्री की तरह अपने मृत पति को जीवित कर लेना या मेरी की तरह वर्जिन रहते हुए ईसा मसीह जैसे पुत्र को जन्म देना; निश्चित रूप से किसी औरत के सामर्थ्य से बाहर की बात है जिसके लिए उनसे सतत प्रयत्नशील रहने की अपेक्षा की गई है।[5] दूसरी तरह की औरतें जो पितृसत्तात्मक मिथकों में मौजूद हैं, उन्हें 'डायन', 'चुड़ैल', 'राक्षसी' वग़ैरा कहा गया और अपवित्र माना गया। यह वे औरतें थीं, जो न सिर्फ़ पितृसत्ता द्वारा निर्धारित 'एक अच्छी औरत' के प्रतिमान से अलग थीं, बल्कि अपने व्यक्तित्व में ऐसी 'क्रूरताएँ' समाहित किए हुई थीं, जिनकी अपेक्षा किसी 'सामान्य' औरत से कर पाना असम्भव है। ये ज़िंदा बच्चों को खा सकती थीं या झाड़ू पर उड़ सकती थीं[6] या पूतना की तरह केवल दूध पिला कर बच्चों की जान ले सकती थीं। ऐसी कोई भी विशेषता जो पूरी तरह एक शैतान (evil) औरत की तस्वीर खींचती हो इसमें जोड़ी जा सकती है। इन्हें काल्पनिक मानने से शायद ही किसी को ऐतराज़ होगा। मिथकों, नजीरों और दंतकथाओं की दुनिया में इन 'दो तरह' की औरतों की खींचतान कराते हुए पितृसत्ता ने बड़ी ही कुशलता से एक ख़ास तरह की औरत को अपने इतिहास से बाहर रखा। यह जाति, धर्म, वर्ग तथा दूसरी तमाम तरह की विविधताएँ लिए हुए सचमुच की स्त्रियाँ थीं। यह हमारी-आपकी तरह सामान्य औरतें भी हो सकतीं थीं, या पितृसत्ता को चुनौती देने वाली पंडिता रमाबाई और आंडाल जैसी असामान्य औरतें भी।[7] उसमें ऐसी औरतों के लिए भी जगह थी, जो पितृसत्ता द्वारा सुझाए गए 'अच्छी' औरत के प्रतिमान पर खरी उतरना चाहती हों, मगर ज़िंदगी का दबाव या इच्छाएँ ऐसा होने नहीं देतीं। यह औरतें पितृसत्तात्मक कथाओं की श्वेत -श्याम चित्रावली से अलग सहज जीवन की बहुरंगी और बहुस्तरीय

छवियाँ पेश कर रही थीं। सभ्यता के हज़ारों वर्षों के इतिहास में ऐसी अनगिनत औरतों को, जिनका इतिहास में होना, स्त्री जाति को गौरव के बोध से भर देता, जिनके रहते पितृसत्ता की कोरी गप्प, जो बतौर 'इतिहास' हमारे सामने मौजूद है, किसी काम की नहीं रहती, उन्हें इतिहास से बाहर रखा गया। सीमंतनी उपदेश की 'अज्ञात' हिंदू लेखिका, जिनका नाम श्रीमती हरदेवी था, का शुमार ऐसी ही औरतों में है।

वह दौर जब हिंदी के सार्वजनिक जगत में 'बालाबोधिनी' जैसी पत्रिकाएँ निकाल कर लड़कियों को बेशर्त 'पतिसेवा' और 'पतिभक्ति' का पाठ पढ़ाया जा रहा था, उस वक़्त 'सीमंतनी उपदेश' जैसी पुस्तक लिख कर 'पतिव्रत धर्म' का मखौल उड़ाने वाली इस विधवा युवती को हिंदी का पितृसत्तात्मक लोकवृत्त क्योंकर अपना लेता? सो वही हुआ, जो पितृसत्तात्मक इतिहास ऐसी स्त्रियों के साथ करता है। हरदेवी कहीं किसी पुस्तकालय की जर्जर धूल खाई रचना में 'अज्ञात' हिंदू औरत के रूप में दबी रहीं, तो कहीं हिंदी साहित्य के किसी इतिहास में 'किसी वक़ील की पत्नी' के रूप में।[8] कहीं पर उनके द्वारा निकाली जा रही पत्रिका की नाप-जोख तो दुरुस्त थी, लेकिन हरदेवी का नाम गुमनाम हो चुका था।[9] यह बात और है कि एक समय था, जब हरदेवी हिंदी, उर्दू तथा अंग्रेज़ी की मिली-जुली सार्वजनिक दुनिया में अपने नाम से पहचानी जाती थीं।

1886 के मार्च महीने में जब पश्चिमोत्तर प्रांत की एक महिला, इंग्लैण्ड के लिए रवाना होने वाले जहाज़ पर चढ़ी, उस वक़्त हिंदी के लोकवृत्त ने इस ख़बर को ध्यान देने लायक भी नहीं समझा था।[10] हालाँकि दो वर्ष बाद ही इन्हें उपेक्षित कर पाना कठिन हो गया[11], जब लंदन से लौटने के बाद श्रीमती हरदेवी ने दूसरी औरतों को भी परदे से बाहर खींच लाने की जद्दोजहद शुरू कर दी। अब हरदेवी के निजी क्रियाकलाप भी अख़बारों की सुर्ख़ियाँ बनने लगे थे।[12] 12 मार्च 1889 को जब वे आत्माराम पाण्डुरंग, बैरिस्टर रोशनलाल, मदनलाल लल्लू भाई मुंसिफ़ आदि के साथ अपने भाई सेवाराम और उनकी पत्नी को लंदन के लिए विदा करने बंदरगाह पर पहुँचीं तो 'द टाइम्स आफ़ इंडिया' जैसे अख़बारों ने इस ख़बर को प्रमुखता से छापा। हरदेवी की तीन वर्ष पहले की गई 'लंदन यात्रा' को याद करते हुए 'द टाइम्स आफ़ इंडिया' ने लिखा,

"श्रीमती सेवाराम और श्रीमती हरदेवी संभवतः पहली कायस्थ महिलाएँ हैं जिन्होंने अपना परदा उतार फेंका और कालापानी को पार किया, और इसके लिए वे अतिरिक्त श्रेय की हक़दार हैं क्योंकि उनके क्षेत्र की महिलाएँ बहुत ही पिछड़ी दशा में हैं और शायद ही कभी परदे से बाहर निकलती हैं।"[13]

आख़िर कौन थी यह महिला?

आधुनिक लाहौर की अनेक ख़ूबसूरत इमारतों के निर्माता, लेखक तथा इतिहासकार रायबहादुर कन्हैयालाल की पुत्री हरदेवी उच्च शिक्षा के लिए इंग्लैण्ड जाने वाली संभवतः प्रथम हिंदीभाषी महिला थीं। स्त्री शिक्षा के प्रचार के लिए समर्पित श्रीमती हरदेवी की सार्वजनिक उपस्थिति पहली बार 'लंदन-यात्रा' के साथ ही दिखाई देती है, जहाँ वे बच्चों (सम्भवतः बालिकाओं) की शिक्षा से सम्बंधित किंडरगार्टेन पद्धतियों का अध्ययन करने गई थीं। जहाँ से लौटकर उन्होंने अंग्रेज़ी तथा देशी भाषाओं में अनेक पैमफ़्लेट--पुस्तिकाएँ प्रकाशित कीं तथा 'स्त्री शिक्षा को समर्पित' मासिक पत्र 'भारत भगिनी' को इलाहाबाद से निकालना शुरू किया जिसे बाद में ये लाहौर ले आई थीं।

हरदेवी अपने समय के हिंदीभाषी संसार में 'अज्ञात' या अपरिचित नहीं थीं। 1888 में लंदन से लौटने के बाद श्रीमती हरदेवी लाहौर तथा देश के दूसरे हिस्सों में होने वाली सार्वजनिक गतिविधियों में लगातार सक्रिय देखी जा सकती हैं। कभी कांग्रेस या सोशल कॉन्फ्रेंस के अधिवेशनों में[14], कभी किसी महिला सभा में भाषण देते हुए[15], कभी किसी कन्या विद्यालय के समारोह में[16], तो कभी राजनैतिक आंदोलनों की अगली कतार में।[17] सब कहीं उनके धुँधले पड़ गए निशान मौजूद हैं। आश्चर्य है, एक-एक साहित्यकार पर सैकड़ों पुस्तकें लिख डालने वाला हिंदी का सार्वजनिक जगत, इस गम्भीर और प्रभावशाली लेखिका के विषय में आपराधिक ढंग से मौन क्यों है?

हिंदी-लोकवृत के शुरुआती दिन और श्रीमती हरदेवी

कमोबेश हिंदी के साहित्येतिहासकारों का नायक-पूजा के प्रति अगाध प्रेम, हमेशा से सार्वजनिक क्षेत्र की एक समूची तस्वीर खींच पाने में बाधा बना रहा है। वस्तुतः हिंदी साहित्य का इतिहास, छँटनी का इतिहास बन कर रह गया है जहाँ धर्म, वर्ण, लिंग, क्षेत्र, लहजा, आदि कोई भी

वजह किसी साहित्यकार को इतिहास में शामिल न करने के लिए पर्याप्त है।[18] इसका परिणाम यह हुआ कि हर युग का साहित्य कुछ गिने-चुने लेखकों के इर्द-गिर्द घूमता रहा और उनके लेखन को ही अमुक युग की 'प्रवृत्ति' मान लिया गया। उन्नीसवीं सदी के हिंदी साहित्य के विषय में यह धारणा बन चली कि यह बनारस तथा प्रयाग के कुछ गिने-चुने धार्मिक प्रकृति के सनातनी लेखकों का साहित्य है[19], जो मुख्यतः राधा-कृष्ण के प्रेम-प्रसंगों पर शृंगारिक रचनाएँ किया करते थे तथा यत्र-तत्र समाज-सुधार के विषयों पर कुछ नाटक या उपन्यासनुमा रचनाएँ भी लिख देते थे। जहाँ पत्रकारिता भी दीर्घसमास युक्त ब्रजभाषा की ललित-पदावली का पुट लिए रहती थी तथा जिस दौर में आम बोल-चाल की खड़ी बोली का एक पृष्ठ लिख पाना बड़ी भारी उपलब्धि का कार्य था।[20] ऐसे में वे जो कर रहे थे, उसे ही बहुत माना गया। वास्तविकता इससे उलट थी।

उन्नीसवीं सदी की शुरुआत से ही खड़ी बोली हिंदी में पुस्तकें छपना शुरू हो गई थीं और सदी के उत्तरार्ध में यह बिहार या बंगाल से लेकर पंजाब, दिल्ली, पश्चिमोत्तर प्रांत, मध्यप्रांत या बरार, बम्बई तथा छत्तीसगढ़ आदि हर जगह से छपने लगी थीं।[21] हर जगह से अख़बार निकल रहे थे और उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध तथा उत्तरार्द्ध दोनों में अनेक स्त्रियाँ भी युगानुरूप भाषा-शैली में साहित्य सृजन कर रही थीं।[22] किंतु हरदेवी का साहित्य उन सब से अलग तथा विशिष्ट है। उस युग के हिंदी लोकवृत्त में जेंडर सम्बन्धों की इतनी पैनी समझ तथा स्त्री-शिक्षा को लेकर इतनी साफ़ दृष्टि और किसी लेखक-साहित्यकार के यहाँ नहीं है। क्या यही वजह है, कि हरदेवी आज हिंदी साहित्य के इतिहास में कहीं नहीं हैं? पितृसत्ता का यह आज़माया हुआ तरीक़ा है। यहाँ अपने विरोधी स्वर को इस हद तक अनसुना किया जाता है कि वह धीरे-धीरे ख़ुद ही ख़ामोश हो जाए। ब्रह्मसमाजी श्रीमती हरदेवी का लेखन, जिस पर कन्हैयालाल अलखधारी के तर्कवाद की छाप हो, जो मनु के धर्मशास्त्र को 'अधर्म्मशास्त्र' कहने का साहस रखती हों, विधवा होते हुए जो पुनर्विवाह करें, पंडिता रमाबाई के मिशनरी कार्यों को सराहना योग्य समझें, जो एक स्त्री होकर भी समुद्र यात्रा कर आयी हों, वह भी तब, जब एक हिंदू पुरुष भी समुद्र यात्रा पर जाति-बहिष्कृत कर दिया जाता जाता था। हिंदी लोकवृत्त के तत्कालीन वर्चस्वशाली समूह ने ऐसी महिला की उपेक्षा करना ही सुरक्षित समझा। इसी का अनुसरण हिंदी साहित्य के इतिहासकारों ने किया। उनके लिए परदे के पीछे रहकर पितृसत्तात्मक नियम-क़ायदों की वकालत करने वाली 'बंग महिला' को उन्नीसवीं सदी की एकमात्र लेखिका बताना अधिक कारगर था।[23] अब वे आसानी से कह सकते थे, कि भारतेंदु तथा उनके मंडल द्वारा स्त्रियों के सम्बंध में जो भी लिखा जा रहा था, समय को देखते हुए उतना भी बहुत था।

यूरोप की तरह हिंदी का लोकवृत्त भी 'निजी' और 'सार्वजनिक' के सैद्धांतिक विभाजन के साथ उभरा था। जहाँ सार्वजनिक क्षेत्र में अभिकर्ता (actor) बनने की प्राथमिक शर्त ही एक निजी क्षेत्र के स्वामित्व पर टिकी थी।[24] हम देखते हैं कि इंग्लैण्ड की तरह, यहाँ भी स्त्रियों को 'घरेलू क्षेत्र' में सीमित रखने तथा पारिवारिक जीवन के प्रबंधन में कुशल बनाने पर ज़ोर दिया गया। स्त्री-शिक्षा का लक्ष्य स्त्रियों को आदर्श पत्नी तथा माँ बनाना था।[25] स्त्रियों की जगह घर के भीतर मानी गई तथा उनकी शिक्षा की परिधि 'घरेलू क्षेत्र' के कुशल प्रबंधन तक सीमित रखने की कोशिश की गई। किंतु यह न तो यूरोप में सम्भव हुआ था, न भारत में हो सका। चारु गुप्ता सही लिखती हैं, "आप ठोंक-पीटकर सिलेबस बना सकते थे, पर एक बार शिक्षित हुई महिला के लिए 'क्या पढ़ेगी, क्या नहीं पढ़ेगी' का बंधन लगाए रखना और वह पढ़कर अपने ज्ञान का क्या इस्तेमाल करेगी, इसे तय करना बेहद मुश्किल था।"[26]

स्त्रियों की शिक्षा का ढाँचा ज़रूर ऐसा निर्धारित करने की कोशिश की गई, जिससे वे 'ज़रूरत से ज़्यादा' न जानें और घरेलू क्षेत्र के भीतर ही बनी रहें, लेकिन ऐसा हुआ नहीं। अभी भारत में एक सार्वजनिक क्षेत्र ठीक से आकार भी न ले सका था, कि शिक्षित औरतों की तरफ़ से कुछ तीखे प्रतिरोध के स्वर सुनायी देने लगे। यह स्वर पंडिता रमाबाई, रुख़्माबाई, ताराबाई शिंदे जैसी महिलाओं के थे। इन्होंने न सिर्फ़ निजी क्षेत्र के भीतर समझे जाने वाले विवाह, सहवास तथा यौनिकता के प्रश्न को, एक राजनैतिक मुद्दा बनाया, बल्कि एक क़दम आगे बढ़कर सार्वजनिक क्षेत्र को उस हद तक 'एकिक' बनने से रोका जिसे जुर्गेन हैबरमास किसी लोकवृत्त की आदर्श स्थिति मानते हैं।[27] हिंदी सार्वजनिक क्षेत्र में भी 1880 के दशक में एक ऐसी ही आवाज़ सुनी गई। यह आवाज़ इतनी तीक्ष्ण थी कि देश-विदेश तक इसे दोहराने वाले और इसकी प्रशंसा करने

वाले मौजूद थे। लगभग पाँच दशकों तक भारत के सार्वजनिक जगत में श्रीमती हरदेवी के व्यक्तित्व ने अपनी उपस्थिति बनाए रखी। लेकिन नेशनल सोशल कान्फ्रेंस की एक सदस्य, हिंदी की पहली महिला सम्पादक तथा उन्नीसवीं सदी की उम्दा साहित्यकार श्रीमती हरदेवी के विषय में हिंदी के पाठक शायद ही जानते हों।

अहले कमाल रायबहादुर कन्हैयालाल 'हिंदी'

'तारीख़-ए-लाहौर' की भूमिका[28] में अपना परिचय देते हुए राय बहादुर कन्हैयालाल ख़ुद को "लाला हरनारायण कायस्थ जलेसरी हाल ए मुवत्तिन शहरे लाहौरी" का पुत्र बताते हैं। 'Minutes of Proceedings of the Institution of Civil Engineers, 1888'[29] में भी कन्हैयालाल को पश्चिमोत्तर प्रांत के आगरा ज़िले में अवस्थित जलेसर का निवासी बताया गया है। यह अब एटा ज़िले में पड़ता है। प्रारम्भिक शिक्षा 'गवर्नमेंट कालेज, आगरा' से प्राप्त करने के बाद वे रुड़की कालेज (वर्तमान आई.आई.टी. रुड़की) में इंजीनियरिंग की पढ़ाई के लिए चले गए। जहाँ वे इंजीनियरिंग की उपाधि पाने वाले प्रथम भारतीय हुए।[30] 1851 में उनकी नियुक्ति 'पूर्वी यमुना कनाल' में बतौर सब-असिस्टेंट सिविल इंजीनियर हुई। 1852 में लाहौर के 'लोक निर्माण विभाग' में उनकी नियुक्ति हुई। वे यहाँ कुछ ही वर्षों में विभाग के सबसे ऊँचे ओहदे, 'एक्जीक्यूटिव इंजीनियर' पर पहुँच गए, जो उस दौर में किसी भारतीय के लिए एक बड़ी उपलब्धि थी।[31] कन्हैयालाल लगभग तीन दशकों तक लाहौर के 'लोक निर्माण विभाग' में कार्यरत रहे और शहर की कई महत्वपूर्ण इमारतों का निर्माण उनकी देखरेख में हुआ। इनमें 'मेयो स्कूल आफ़ आर्ट्स', 'मांटगोमरी एंड लारेंस हाल' जो अब 'कायद ए आज़म' पुस्तकालय है, 'लाहौर सेंट्रल जेल', 'टेलीग्राफ़ आफ़िस', लाहौर का 'मुख्य न्यायालय' और दूसरी बहुत सी इमारतें शामिल हैं। उन्होंने मुग़ल काल की बहुत सी इमारतों का जीर्णोद्धार भी किया, जिनमें 'दाई अनगा का मक़बरा', 'शरफ़ुन्निसा बेगम का मक़बरा', 'जहाँगीर और आसफ़जहां का मक़बरा' आदि सम्मिलित हैं।[32] उनकी सेवाओं के लिए 1876 में लॉर्ड नॉर्थब्रुक ने उन्हें 'रायबहादुर' की उपाधि प्रदान की।[33] रायबहादुर कन्हैयालाल केवल इंजीनियर ही नहीं थे, अपने समय के एक गम्भीर लेखक भी थे। उनके इतिहास ग्रंथ 'तारीख़-ए-पंजाब', 'तारीख़-ए-लाहौर', 'ज़फ़रनामा ए रणजीत सिंह' आदि आज भी गम्भीर इतिहास पुस्तकों में गिने जाते हैं। पंजाब में ज़िंदगी गुज़ार देने वाले कन्हैयालाल को अपने 'हिंदी' होने का शिद्दत से अहसास था। वे फ़ारसी तथा हिंदोस्तानी[34] में 'हिंदी' तख़ल्लुस से शायरी किया करते थे।[35] उनके 'गुलज़ार-ए-हिंदी', 'निगारीन नामा' आदि की इतनी माँग थी कि वह उन्हें कई बार छपवा चुके थे, जिसका ज़िक्र वे 'तारीख़-ए-लाहौर' की भूमिका में करते हैं। यह उस ज़माने की बात है, जब हिंदी और उर्दू के बीच की लौह दीवार खींची जानी बाक़ी थी। ख़ुद को 'हिंदी' कहने वाला यह उर्दू तथा फ़ारसी का लेखक इतिहासकार, जिसकी खड़ी बोली ने अपनी शैली मज़हब को आगे रखकर नहीं चुनी थी, उनका होना उसी दौर में सम्भव था। यह वो परम्परा थी जिसने हमें प्रेमचंद दिए। रायबहादुर कन्हैयालाल हिंदी क्षेत्र के उस बहुभाषिक समुदाय के प्रतिनिधि थे जिसे 'नागरी हिंदी' के तंग दायरे के भीतर नहीं समझा जा सकता। अंग्रेज़ी में शिक्षित इंजीनियर कन्हैयालाल जिनकी मादरी ज़बान ब्रजभाषा थी, जो पंजाबी के जानकार थे और फ़ारसी तथा हिंदोस्तानी के लेखक; भारत के बहुभाषिक समुदाय की उस अवधारणा की ओर इशारा करते हैं जिसपर फ्रेंचेस्का ऑर्सीनी जैसे विद्वान ज़ोर देते रहे हैं। इन्हीं रायबहादुर कन्हैयालाल की पुत्री थीं श्रीमती हरदेवी, जो इसी बहुभाषिक पृष्ठभूमि में पली-बढ़ी थीं।

आगे हम देखेंगे कि किस तरह हिंदोस्तान में न सिर्फ़ देशज भाषाओं की दुनिया आपस में जुड़ी हुई थीं बल्कि हिंदी का लोकवृत एक हद तक अंग्रेज़ीभाषी भारतीय समुदाय के बीच आकार ले रही अंग्रेज़ी की दुनिया से भी जुड़ा हुआ था। जहाँ विचारों तथा बहसों का अबाध आदान-प्रदान चला करता था। हम देखेंगे कि किस तरह युवा हरदेवी की हिंदी रचना का अंग्रेज़ी अनुवाद एक 'इंग्लिश लेडी' ने किया और किस तरह एक अंग्रेज़ी भाषी बंगाली ने अपने लेख में 'सीमंतनी उपदेश' की पंक्तियाँ कई वर्ष बाद उद्धृत की और कैसे सीमंतनी उपदेश का पहला अध्याय पंडिता रमाबाई द्वारा अपनी चर्चित किताब 'द हाई कास्ट हिंदू वीमेन' में उद्धृत किया गया। इसी तरह हरदेवी के 'वर्नाक्यूलर' भाषा में किए गए लेखन पर किस तरह 'पंजाब पैट्रियट' या दूसरी अंग्रेज़ी की पत्रिकाओं में चर्चा होती रही। यह सब उन्नीसवीं सदी के उस बहुभाषिक समाज

की ओर ही इशारा करता है जिसने हिंदी लोकवृत्त को एक अधिक विस्तृत और खुली हुई सार्वजनिक दुनिया बनाने में मदद की।

हरदेवी का जीवन

हालाँकि हरदेवी द्वारा उर्दू में अपनी आत्मकथा लिखने की जानकारी मिलती है, लेकिन जब तक वह आत्मकथा मिल नहीं जाती; हमारे पास उनकी एक टूटी-बिखरी जीवनी मौजूद है। इनका जन्म 1863 के आस-पास हुआ होगा जिसका पता 1905 ई. के एक दस्तावेज़ से लगता है जिसमें उन्हें 42 वर्ष का बताया गया है।[36] कायस्थ जाति सभाओं पर महत्वपूर्ण शोध करने वाली लूसी कैरोल ने हरदेवी को बाल-विधवा बताया है। इसके अलावा 1881 में प्रकाशित 'स्त्री विलाप' जो कि हरदेवी की ही रचना मालूम होती है, उसमें उनके विवाह की आयु चौदह वर्ष बतायी गई है। बहरहाल, हरदेवी एक युवा विधवा थीं और लंदन जाने से पहले एक सुशिक्षित महिला थीं। इसका पता 'लंदन यात्रा' को पढ़कर लग जाता है। लेखन तथा जीवन की दूसरी घटनाएँ तथा तथ्य इस निष्कर्ष पर पहुँचाते हैं कि वे ही 'स्त्री विलाप' 1881, 'सीमंतनी उपदेश' 1882 तथा एक विधवा युवती द्वारा 1881 में लिखे गए लेख 'हिंदू विडोज' की लेखिका थीं। 'स्त्री विलाप' 1881 में शाहजहाँपुर के 'आर्य दर्पण प्रेस' से छपी 'एक विधवा स्त्री' की रचना है। जिसकी भाषा-शैली तथा विचारधारा पूर्ण रूप से 'सीमंतनी उपदेश' से मेल खाती है। यह पुस्तक 'सीमंतनी उपदेश' की पूर्व-पीठिका जान पड़ती है।

'सीमंतनी उपदेश' नागरी में 'एक हिंदू औरत की तसनीफ़' नाम से छपी थी। इस किताब का एक लेख लंदन से प्रकाशित होने वाले 'The Journal of National Indian Association' में सन् 1881 को 'एक युवा विधवा' की रचना के बतौर छपा था।[37] लेख का शीर्षक था— ''Hindu Widows, by One of Them (written by young widow, and translated by an English Lady)। किस तरह हरदेवी ही 'सीमंतनी उपदेश' तथा 'स्त्री विलाप' की लेखिका थीं, इस पर आगे विस्तार से विचार किया जाएगा। श्रीमती हरदेवी के ब्रह्मसमाजी होने का उल्लेख मिलता है। ब्रह्मसमाज द्वारा एक निराकार ब्रह्म में विश्वास को पर्याप्त मानना तथा ब्राह्मणवादी रूढ़ियों, कर्मकाण्डों आदि का निषेध, निश्चित रूप से उन्नीसवीं सदी की एक सुशिक्षित युवा विधवा के लिए हौसला देने वाला रहा होगा। जिसे 'स्त्री विलाप', 'सीमंतनी उपदेश' तथा हरदेवी की बाद की रचनाओं तथा पत्रकारिता में भी महसूस किया जा सकता है। हरदेवी द्वारा ब्राह्मणवादी कर्मकांडों के उपहास का एक उदाहरण देखिए :

''पस मैं अपनी जाति की रसमैं कि जिस में मैं हूँ यहाँ लिखती हूँ। पहिले प्रोहित जी का हाल लिखा जाता है, हरएक क़ौम हरएक फ़िरक़े के हर जात के साथ प्रोहित जी रहते हैं, जैसे हर रिसाले, फ़ौज पलटन के साथ अलहदा कपतान जनरैल, कमिशनर रहता है; जैसे तमाम फ़ौज इन के अखत्यार में रहती है जिधर चाहते हैं भेजते हैं वैसे ही तमाम हिंदुस्तान प्रेतों के अखत्यार में है जो चाहते हैं इन से कराते हैं और तो और खाना भी बिना अपने हुकम के नहीं खाने देते।

ये वही प्रेत हैं जिनकी पीड़ा देने से आज तमाम हिंदुस्तान पीड़ित हो अतैव दुःख को प्राप्त हो रहा है, हर क़ौम हर जात हर ख़ानदान हर घर में यह प्रेत पीड़ा है और इन प्रेतों के साथ एक भूत भी हर समय हिंदुओं का ख़ून पीने को रहता है जैसे चोरों के साथ गाँठ काटनेवाले रहते हैं, जैसे यह कहावत भी है कि जहां गंगा तहाँ झाऊ जहां प्रोहित तहां नाऊ, प्रोहित जो कहते हैं कि यजमान के दसवें अंश के हर काम में हम मालिक हैं, जैसे दामन चोली बिना नहीं पहचाना जाता वैसे ही यजमान प्रोहित बिना नहीं रह सकता।

विवाह में वर कन्या के माता पिता न कुछ देखते हैं न किसी काम में बोलते हैं जो कुछ प्रोहित और ठाकुर साहब कर आते हैं वही होता है, ये लोभ की मूर्तें दस रुपये के लालच में आकर दस वर्ष की कन्या का साठ वर्ष के वर से विवाह कर देते हैं, कभी बीस वर्ष की कन्या को सात वर्ष के वर से विवाह देते हैं, कभी कभी कन्या के माता पिता को भी लालच दिखा इस महापाप में पतित करते हैं।

यह बात तमाम हिंदुओं में है किंतु आजकल जारी है कि जितना रुपया विवाह में ख़र्च होता है उस का आधा नाई प्रोहित को देना पड़ता है, जो कि लगायत की लीक के नाम से प्रसिद्ध है, बहुत लोग इसी लीक के पीछे कन्याओं का विवाह भी नहीं करते, न लीक के योग्य रुपया होता है न विवाही जाती हैं, और जो जो ख़राबी बड़ी उमर में विवाह न करने से होती है किसी से छिपी नहीं है : इसी लीक ने बड़े बड़े इज़त दारों की बेइज़्ज़ती कर अंत को जेल खाने में भेज दिया है, इसी लीक के पीछे जो आज इज़्ज़तदार शरीफ़ नज़र आते हैं सब जादाद इस के नज़र कर अख़ीर में टुकड़े माँगकर मरते हैं, इसी लीक के पीछे चोरी कर बग़ैर मौत दुनिया से चल देते हैं, तमाम हिंदू इसी लीक के फ़क़ीर हैं, जो इस लीक से ज़रा सरका वहीं कि प्रोहित जीने किरानी मशहूर कर दिया।

लीक का तात्पर्य यह है कि जो जो उन के मन में आया विवाह की हर रस्म में अपना टेक्स ठहरा लिया, जिसने इस टेक्स में ज़रा कमी की उसी के दरवाज़े पर छुरी मारने को त्यार हो गये, पस लाचार हो बिचारे क़रज़कर भूखों मर इनका टेकस पूरा करते हैं।

पहिले सगाई ही में जिसे मंगनी कुड़माई कहते हैं जो कन्या का पिता वर के वास्ते पांच रुपया भेजता है तो ढाई प्रोहित जी और सवा

ठाकुर साहब ले लेते हैं बाक़ी कुल सवा वर को मिलता है, फिर इनके खिलाने में बड़ा ख़र्च करते हैं, कपड़ा दिया जाता है, जो खाना अच्छा न मिले तुरंत सगाई तुड़वा देते हैं।

जब विवाह सुझवाया जाता है याने प्रोहित जी का हुकम लिया जाता है कि किस दिन किस लगन में विवाह हो तब भी जन्मपत्र के साथ कुछ रुपया इनके आगे धरते हैं।

यहां सिवाय कहने "महाराज दान करौ" प्रोहित जी को कुछ भी नहीं आता, मूर्खों के आगे तो गुनमुन कर कर बता देते हैं और जो थोड़ी बहुत संस्कृत जानते हैं उनके वास्ते अपने आगे एक पंडित नौकर रख छोड़ते हैं, कभी अपने लेने के मारे विवाह में ग्रहों को पीछे लगा देते हैं, कह देते हैं कि इस विवाह में चंद्रमा की पूजा करो राहू की पूजा करो सूर्य की पूजा करो गौ का दान करो तब ग्रह का फल दूर होगा वरना बरको बहुत कष्ट प्राप्त होगा और ऐसा विवाह कोई नहीं जिस में पूजा न लगती हो और कभी कभी ग्रह इन के सिर को भी आन चिपटते हैं तब यह अक़िल के दुश्मन अपनी आमदनी का दरवाज़ा बंद कर मशहूर करते हैं कि चार वर्ष कोई विवाह न करे वृहस्पति महाराज सिंगल दीप में तशरीफ़ ले गये हैं, जब वे वापिस आवेंगे तब शादी करना, जब दो वर्ष गुज़रते हैं और पास खाने को नहीं रहता मज़दूरी करनी आती नहीं तब कह देते हैं, वृहस्पति कन्याओं की पुकार सुन लौट आये अब ख़ुशी से शादी करो।

विद्या का लेश मात्र भी पंडित जी में नहीं होता पस "गणानांत्वा गणपति" कहकर बता देते हैं, मूर्ख स्त्रियों में तो प्रोहित जी ही काम चलाते हैं, मैं भी एक दफ़ा किसी शादी में गई वहां प्रोहित जी को हर कम में विवाह में संकल्प में कुल देव के आगे हर वक़्त यही श्लोक पढ़ते सुना "ओं नमो ब्रह्मण्य देवाय गो ब्राह्मण हितायच। जगहिताय कृष्णाय गोविंदाय नमो नमः॥"

अब प्रोहित जी कहते हैं कि फ़लाने महीने में फ़लाने दिन फ़लानी लग्न में विवाह हो, इस में महीना पहिले लग्न भेजी जाय, पंद्रहवें दिन पहिले हल्द धान दरेता हो, नो दिन दोनों वक़्त तैल चढ़ाया जावे, चौथे दिन विदा हो जावे; जो इन लग्नों में मेरे कहने अनुसार विवाह न हुआ तो कन्या जाते ही रांड हो जायगी।

अब हम प्रोहित जी से पूछती हैं कि अपनी लड़कियों का तो बराबर इन्हीं लग्नो में विवाह करते हो फिर वे क्यों रांड हो जाती हैं? क्यों नहीं उस शुभ लग्न की तलाश करते जिस में भारतखंड की स्त्रियां बैधव्य से बचैं।"[38]

भला पुरोहितों को 'प्रेत' कहने वाली यह युवती जो ब्राह्मणों द्वारा बताए जा रहे हर विधान को 'गड़बड़ स्मृति' से उपजा बताकर उनका उपहास किया करती थी। जिसे तिथि-मुहूर्त, राहु-केतु सब 'प्रेत जी' के बनाए धन ठगने के साधन लगते थे। ऐसी लेखिका उन्नीसवीं सदी के हिंदी लोकवृत्त पर क़ाबिज़ सनातनी खेमे के उन बुद्धिजीवियों को कहाँ सुहाती, जो जब-तब अपनी पत्रिकाओं में 'चंद्रग्रहण के अवसर पर सूतक के विषय में भारतेंदु के विचार', मार्गशीर्ष में पूजा-पाठ के कर्मकांड बताने वाले भारतेंदु लिखित 'मार्गशीर्ष महिमा', कार्तिक, माघ और दूसरे तरह-तरह के महीनों में तरह-तरह से स्नान-पूजा के पुण्य बताने वाले उनके लेख छापा करते थे। जहाँ हैज़े से बचने के लिए 'कविवचनसुधा' जैसी पत्रिकाओं में ताम्बे का सिक्का या जंतर पहनने का उपाय भारतेंदु हरिश्चंद्र सुझाया करते थे। सो यह तो तय था कि 'स्त्री शिक्षा' का अर्थ ही 'मातृ-शिक्षा' समझने वाले हिंदी-लोकवृत्त के सनातनी खेमे में जहाँ स्त्रियों की शिक्षा 'शिशुपालन' जैसे 'बालाबोधिनी' में छपने वाले लेखों तक सीमित समझी जाती थी, स्त्री की 'प्रजनन भूमिका' पर ही सवाल उठाने वाली हरदेवी कभी स्वीकृत नहीं हो सकती थीं। जो औरतों को औलाद की ख़्वाहिश छोड़कर-'कोई किताब लिखने', 'मुल्की बंदोबस्त करने' या 'मजहब के साथ दिलेरी करने' के सपने बाँट रही थीं। ज़रा इसे पढ़कर देखिये :

"एक औलाद की चाहने वाली का हाल

किसी स्त्री ने एक पंडित से पूछा—"महाराज, कोई ऐसा यत्न बताओ जिससे मैं पुत्र का मुख देखूँ।" पंडित जी ने कर्म विवाह जन्म पत्र में देख के बताया कि फ़लाने शमसान में आधी रात के वक़्त में तू तेरा खाविंद मुर्दे की पूजा कर उसे उठावे, वह तेरे गले से मिले तब औलाद हो। वह औरत खाविंद की मिन्नत कर पंडित जी को साथ ले आधी रात को शमसान में पहुँची। पंडित जी ने मुर्दे की पूजा कर और दक्षिणा ले उसको खड़ा किया। उस औलाद के चाहने वाली ने बड़ी ख़ुशी से गले लगाया। ज़रा भी ख़ौफ़ दिल में न लाई। पूजा करके तीनों घर को फिरे। राह में याद आई कि पंडित जी की पोथी वहाँ ही रह गई पंडित ने खाविंद से पोथी लाने को कहा। उसने इनकार कर कहा—"चाहे सात जन्म औलाद न हो मगर मैं इस वक़्त श्मसान में न जाऊँगा।" उसी आशिक़ औलाद ने कहा—"मैं जाती हूँ। तुम लोग यहाँ ही खड़े रहो।"

रास्ते में ख़्याल किया कि मुर्दे के एक दफ़ा गले मिलने से एक लड़का होगा। एक दफ़ा और मिलूँ ताकि दूसरा भी हो। लड़के की आरज़ू में मुर्दे से जा लिपटी। उसने भी अकेला जान ख़ूब जोड़ से पकड़ा। अब रोने चिल्लाने लगी। पास के लोगों ने आ कर बड़ी मुश्किल से छुड़ाया। इसी ख़ौफ़ से घर आकर तीसरे दिन मर गई। अब देखना चाहिए मर्दों को ज़्यादा ख़्वाहिश है या औरतों को? मुर्दे में तो फिर जान का पड़ना नामुमकिन है, शायद पंडित जी ने किसी अपने दोस्त को मुर्दा बनाया होगा या किसी उस औरत के चाहने वाले से मिलने की यह सूरत निकाली होगी। अक्सर दुष्ट आदमी मुर्दा बन या कोई देवता बन भैरों, हनुमान, नरसिंह, शहाबा—इनकी शक्ल बना औलाद के चाहने वाली नेक औरतों का धर्म खोते हैं।

ऐ हिंदुस्तान की नेक स्त्रियों, एक नापायेदार चीज़ के पीछे अपने क़ीमती वक़्त को न खोवो। इस दुनिया से अपने तईं मत गँवाओ। यह वक़्त, यह जिस्म, यह राज फिर न मिलेगा। जिस चीज़ के क़ायम रहने

की हमें उम्मीद ही नहीं, फिर किस तरह नाम रहने का भरोसा रखें? औलाद से किसी का नाम दुनिया में न रहा। किसी का दस पुश्त, किसी का बीस, आख़िर बंद हो जाता है। फिर उन्हें कोई भी नहीं जानता कौन थीं कहाँ गईं। अगर कुछ दिन नाम रहता है मर्दों का। औरतों का नाम कोई नहीं लेता। फिर तुम क्यों अपना जीवन गँवाती हो?

......

और दूसरी तरह से भी यह ख़्वाहिश तुम्हारी बेफ़ायदा है क्योंकि जब से दुनिया पैदा हुई तभी से लड़के का नाम बाप के नाम के साथ लिया जाता है। तवारीख में बराबर राजाओं का हाल है। कहीं उनकी माँ, बहन, बेटी, जोरू का ज़िक्र नहीं। मगर उन्हीं औरतों का नाम है जिन्होंने कोई किताब तसनीफ की हो या कोई इमारत बनवाई हो या कोई और मुल्की बंदोबस्त किया हो या मजहब के साथ में किसी तरह की दिलेरी की हो या परमेश्वर के भजन में मशहूर हो।

...

बहुत औरतों का ख़्याल है कि स्त्रिएँ औलाद पैदा करने को है। अगर यह नहीं है तो वे किसी काम की नहीं।

नहीं, यह ख़्याल उनका बिलकुल ग़लत है। अगर परमेश्वर संतान के लिए ही औरतों को बनाता तो यह जो नेक-बद पहचानने की अक़्ल हममें है हरगिज़ न देता। आदमी का दिल जो तमाम बदन में एक बेशक़ीमती चीज़ है तुम्हारे न होता। फिर ज्ञानेंद्री, कर्मेंद्री मर्दों की बराबर तुम्हारे न होती।''[39]

स्त्री की पराधीन अवस्था, स्त्रियों में जड़ जमाए बैठी 'मूर्खता' तथा उनके साथ होने वाले हर तरह के अन्याय का कारण 'अविद्या' या 'अशिक्षा' को मानने वाली हरदेवी ने ताज्जुब नहीं कि 'स्त्री शिक्षा' के प्रचार को अपने जीवन का लक्ष्य बना लिया। युवावस्था में ही इतनी तीखी, बेलाग पुस्तकें तथा आलेख लिखने वाली हरदेवी, शिक्षा की किंडरगार्टेन पद्धतियों का अध्ययन करने के लिए 1886 में लंदन चली गईं। जहाँ से वे दो वर्ष बाद वापस लौटीं। लंदन से लौटकर वे स्त्री-शिक्षा के कार्यों में जुट गईं[40] जिसके लिए उन्होंने कई पुस्तकें तथा पर्चे-पैमफ़्लेट लिखे और 'भारत-भगिनी' नाम से 'स्त्री शिक्षा को समर्पित एक मासिक पत्र' का सम्पादन 1888 से शुरू किया। अपने समय की एक महत्वपूर्ण समाज-सुधारक होने के नाते उन्हें सोशल कान्फ्रेंस तथा कांग्रेस के अधिवेशनों में बतौर महिला-प्रतिनिधि आमंत्रित किया जाता था। जिसका ब्योरा वे विस्तार से 'भारत-भगिनी' में छापती थीं।[41]

बैरिस्टर रोशनलाल सक्सेना

'भारत भगिनी : स्त्री शिक्षा की मासिक पत्रिका' के कवर पर सम्पादिका का परिचय कुछ इस तरह लिखा रहता था—

''सम्पादिका श्रीमती हरदेवी—धर्मपत्नि मि. रोशनलाल बी. ए. ब्यारिस्टर एट ला मंत्री श्रीमती आर्य्या प्रतिनिधि सभा पंजाब भाटी दरवाज़ा—लाहौर''।

लंदन से लौटकर हरदेवी ने एक और दुस्साहसी क़दम उठाया। यह था, उच्च जाति की एक हिंदू विधवा का प्रेम-विवाह। बरेली निवासी रौशनलाल लंदन से 1887 में बैरिस्टरी की पढ़ाई करके लौटे। यह इलाहाबाद हाईकोर्ट में वकालत कर रहे थे। रोशनलाल सक्सेना कायस्थ थे और अपने स्कूली दिनों से ही आर्यसमाजी थे। लंदन में पढ़ाई करने गईं हरदेवी से उनका परिचय उसी दौरान हुआ था। लूसी कैरोल हरदेवी तथा रोशनलाल की लंदन से चली आ रही मित्रता का ज़िक्र करती हैं।[42] 1889 में जब हरदेवी के भाई बैरिस्टर सेवाराम की भी मृत्यु हो गई, संभवत: उस वक़्त हरदेवी ने रौशनलाल के साथ विवाह करने का निर्णय लिया।[43] जिसकी ख़बर लाहौर ट्रिब्यून, पंजाब-पैट्रियट तथा इंडियन मैगज़ीन जैसी पत्र-पत्रिकाओं में छपी।[44] अपेक्षाकृत आधुनिक हो रहे कायस्थ समुदाय में जहाँ समुद्र-यात्रा निषेध जैसी दूसरी तरह की रूढ़िवादिता का विरोध होने लगा था वहाँ भी 'विधवा-विवाह' की इस घटना पर तत्काल प्रतिक्रिया हुई और कायस्थ जाति के भीतर ही विवाह करने के बावजूद रौशनलाल को जाति बहिष्कृत कर दिया गया। लखनऊ के कश्मीरी ब्राह्मण विशन नारायण धर ने अपने एक पर्चे में 1887 में रौशनलाल के भारत लौटने के बाद की घटनाओं पर टिप्पणी की है। वे लिखते हैं,

''श्री रोशनलाल, बैरिस्टर-एट-लॉ, एक कायस्थ, बिना किसी विरोध के अपनी जाति में स्वीकार कर लिए गए। निश्चित रूप से उनकी जीवन शैली को लेकर कुछ सवाल उठे, लेकिन उन्होंने केवल टाल-मटोल की रणनीति से अपने जाति-भाइयों को संतुष्ट कर लिया तथा उन्हें सोंचने पर सहमत किया कि वे अब भी उतने ही रूढ़िवादी हैं, जितने इंग्लैंड जाने से पहले थे। जाति के प्रश्न पर उनके विरुद्ध किसी प्रत्यक्ष प्रमाण के अभाव में, उनके लोगों ने उनके पक्ष में फ़ैसला दिया।''[45]

इससे मालूम होता है कि नवम्बर 1889 में लंदन की कार्लाइल सोसाइटी में यह पर्चा पढ़े जाने तक रौशनलाल को जाति-बहिष्कृत नहीं किया गया था। जबकि सी.ए. बेली 1890 के लाहौर ट्रिब्यून की एक ख़बर का हवाला देते हुए बताते हैं कि विधवा हरदेवी से विवाह करते ही रौशनलाल को तत्काल जात-बाहर कर दिया गया था,

"रौशनलाल, एक सक्सेना कायस्थ, जो कि इंग्लैण्ड से वकालत पढ़कर आए थे और जिन्होंने 1887 से थोड़े समय के लिए इलाहाबाद में वकालत की थी, एक समाज सुधारक तथा गोरक्षा प्रचारक के रूप में प्रसिद्ध होकर उन्होंने प्रांत के बाहर भी बहुत से सम्पर्क बना लिए थे, ख़ासकर लाहौर हिंदू सभा में। पहली-पहल, समुद्री यात्रा के बावजूद अपनी जाति में वापस स्वीकार कर लिए गए, (लेकिन) एक भटनागर कायस्थ विधवा से विवाह का परिणाम तत्कालीन जाति बहिष्करण के रूप में सामने आया।"[46]

इससे लगता है कि 1889-1890 के दौरान यह विवाह हुआ होगा। विवाह के बाद रोशनलाल लाहौर में बस गए और उन्होंने यहीं पर वकालत शुरू की और सम्भवत: यही कारण है कि 'भारत भगिनी' को इलाहाबाद से लाहौर ले जाया गया जिसकी सूचना इसी वर्ष प्रारम्भ हुई स्त्रियों की पत्रिका 'सुगृहणी' में हेमंतकुमारी चौधरी ने प्रकाशित की :

"भारत-भगिनी" इस पत्रिका की संपादिका हमारी परम मान्या श्रीमती हरदेवी जी हैं। इस साल पहली जून से इस अवलोचित पत्रिका का प्रकाशन लाहौर नगर से आरम्भ हुआ है।"

शीघ्र ही रौशनलाल लाहौर आर्यसमाज के प्रभावशाली कार्यकर्ता बन कर उभरे और बच्छोवाली स्थित लाहौर आर्यसमाज के मंत्री भी चुने गए, किंतु रौशनलाल ने आर्यसमाज की क़ानूनी सहायता करना अधिक उपयुक्त समझा और ख़ुद को आर्यसमाज के सांगठनिक कार्यों से दूर ही रखा, जहाँ आए दिन लाठियाँ चल जाया करती थीं। हरदेवी का परिचय भी "श्रीमती आर्य प्रतिनिधि सभा की मंत्री" के बतौर मिलता है, हालाँकि वे ब्रह्मसमाजी थीं। यह भी हरदेवी के व्यक्तित्व की एक अद्भुत विशेषता है। 'गाय, साँप, चील, उल्लू' की पूजा करनेवाले हिंदुओं से असहमति जताते हुए भी; वे 'गोरक्षा आंदोलन' के कार्यकर्ता आर्यसमाजी रौशनलाल से विवाह कर सकती थीं, बनारस के सनातनी पंडित सरयू प्रसाद मिश्र के पोते की परवरिश कर सकती थीं, स्वामी शिवज्ञान चाँद के 'धर्म महोत्सवों' में लेक्चर दे सकती थीं, रमाबाई के मिशनरी कार्यों की प्रशंसा कर सकती थीं और हर पंथ का सम्मान करते हुए उसकी कठोर आलोचना कर सकती थीं।[47] उनकी यह विशेषता उन्हें अपने युग की एकमात्र ऐसी शख़्सियत से जोड़ती थी जिसके लिए पंथ नहीं तर्क महत्वपूर्ण था। वह थे, कन्हैयालाल अलखधारी जिन्होंने 'औरतों के वास्ते बेहितर समझ के' मुफ़्त वितरण के लिए 'एक विधवा युवती' की लिखी पुस्तक 'सीमंतनी उपदेश' को प्रकाशित कराया था। संभवत: यह युवावस्था में पड़ा कन्हैयालाल अलखधारी का ही प्रभाव था, जो हरदेवी के मवचस्तिष्क से कभी मिटा नहीं।[48]

राजनीतिक जीवन में हरदेवी लगातार कांग्रेस से जुड़ी रहीं किंतु स्वभाव से वे उग्र-राजनीति की समर्थक जान पड़ती हैं। उनके लेखन और जीवन दोनों से इसका संकेत मिलता है। ब्रिटिश सरकार उन पर कड़ी नज़र रखे हुए थी। 1908 में अंग्रेज़ी सरकार की गुप्तचर विभाग की रिपोर्ट में उनके विरुद्ध लिखा गया, "पंजाब की महिलाओं ने राजनीति में कुछ अधिक रुचि लेना शुरू कर दिया है। जैसा कि अनुमान किया जा सकता है, नेतृत्व सम्भाला है सरला देवी तथा रौशनलाल की पत्नी ने। जो भारतीय महिलाओं की एक सभा की सेक्रेटरी नियुक्त की गई हैं, जो तिलक के नुक़सान पर शोक प्रकट करने के लिए आयोजित थी।"[49]

जानकी देवी बजाज हरदेवी को याद करते हुए लिखती हैं : "हरदेवी लाहौर के बैरिस्टर रौशनलाल की पत्नी। समाज सेविका। हिंदी पत्रिका 'भारत-भगिनी' की सम्पादिका। क्रांतिकारियों के मुक़दमें में धन इच्छा करके सहायता देती रहीं।"[50]

महिला क्रांतिकारियों पर महत्वपूर्ण शोध करने वाली इतिहासकार मनमोहन कौर भी हरदेवी द्वारा क्रांतिकारियों को आर्थिक सहायता देने तथा उनके लिए गुप्त रूप से चंदा इकट्ठा करने का ज़िक्र करती हैं।[51] जबकि 'आर्यसमाज का इतिहास' लिखने वाले सत्यकेतु विद्यालंकार के अनुसार 'पटियाला षड्यंत्र केस' में श्रीमती हरदेवी के अख़बार 'भारत-भगिनी' को राजद्रोहात्मक-साहित्य माना गया था और इसकी प्रतियाँ ज़ब्त कर ली गई थी। सरकारी वक़ील ने 'भारत-भगिनी' का हवाला देते हुए इसके कई अंश पढ़ कर सुनाए थे। राजद्रोह का जो आरोपपत्र तैयार किया गया था, उसमें इस पत्रिका को रखना भी शामिल था। अभियोग कुछ इस तरह थे,

"अभियुक्त लक्ष्मण दास भारत-भगिनी पढ़ कर सुनाया करता था। इसकी सम्पादिका प्रतिवादी पक्ष के एक वक़ील (बैरिस्टर रोशनलाल) की पत्नी है। इस पत्र का स्वरूप स्पष्ट करने के लिए वक़ील ने इसके कुछ अवतरण पढ़ कर न्यायालय में सुनाए जो उनके मतानुसार इस बात को प्रमाणित करते थे कि भारत-भगिनी पूर्ण रूप से राजद्रोहात्मक और क्रांतिकारी पत्र है।"

''अगले अभियुक्त भगवानदास के पास से पुलिस ने एक राजद्रोहात्मक व्याख्यान का मसविदा बरामद किया है। उसके पास से भारत-भगिनी नामक पत्रिका की प्रतियाँ भी मिली हैं।''[52] मालूम पड़ता है कि हरदेवी कांग्रेस से अंत तक जुड़ी रहीं। 1930 के सत्याग्रह आंदोलन में उनकी भागीदारी का ज़िक्र कुछ इस तरह मिलता है, ''जुलाई 1930 में जब लॉर्ड इरविन सेंट्रल असेम्बली को सम्बोधित करने वाले थे, उस वक़्त प्रदर्शन करने के लिए महिलाओं ने अग्रिम मोर्चा सँभाला। इनमें श्रीमती हरदेवी (लाहौर के एक शीर्षस्थ वक़ील की पत्नी), लाडो रानी ज़ुत्शी, श्रीमती पार्वती देवी, श्रीमती राजपति कौल, श्रीमती आसफ़ अली, श्रीमती सत्यवती तथा अन्य सम्मिलित थीं।''[53]

श्रीमती हरदेवी की सार्वजनिक उपस्थिति का फ़िलहाल यह अंतिम उपलब्ध साक्ष्य है। यह हरदेवी के पाँच दशकों तक सक्रिय सार्वजनिक जीवन के कुछ बिखरे हुए साक्ष्य हैं जिनसे बनने वाली एक अधूरी सी तस्वीर से ही संतोष करते हुए हम उनके लेखन की ओर मुड़ते हैं।

साहित्य सृजन

उन्नीसवीं सदी के जिस किसी दस्तावेज़ में श्रीमती हरदेवी का ज़िक्र आया है, वहाँ 'स्त्री शिक्षा' ज़रूर उनके नाम से चस्पाँ है और इस बात का गवाह हरदेवी का समस्त लेखन है। चाहे वह अख़बार हो या उपन्यास, यात्रावृत्त, पर्चे-पैम्फ़्लेट, सम्पादकीय; हरदेवी का लिखा हरेक शब्द, चाहे वह किसी विधा में हो महज़ अपनी प्यारी 'पाठिकाओं' को सम्बोधित है, उनकी शिक्षा को समर्पित है। इससे उनके लेखन की गुणवत्ता गिर नहीं जाती, बल्कि 'स्त्री शिक्षा' सम्बंधी साहित्य की गुणवत्ता बढ़ती है। उस युग में 'स्त्री शिक्षा' के लिए लिखा जाने वाला साहित्य प्राय: स्त्रियों को मूर्ख समझकर लिखा जाता था। बड़े-बड़े 'विद्वान' जब 'स्त्री शिक्षा' की किताब लिखने बैठते थे, तो इस बात का ख़ास ध्यान रखते थे कि 'ज़रूरत' से फ़ाज़िल एक शब्द भी कहीं न लिख जाए। प्राय: ऐसी किताबें दो औरतों को आमने-सामने रखकर लिखी जाती थी, एक 'अच्छी' औरत; जिसका अनुसरण करने की अपेक्षा पाठिकाओं से की जाती थी और एक 'बुरी' औरत; जिसकी तरह न बनने की सलाह दी जाती थी। 'वामा शिक्षक', 'सास पतोहू', 'देवरानी जेठानी की कहानी', 'भाग्यवती', बालाबोधिनी पत्रिका तथा बालकृष्ण भट्ट का 'स्त्री' नामक लेख, सब जगह 'स्त्री शिक्षा' इसी ढाँचे में क़ैद है। ये पुस्तकें स्त्रियों को आज्ञाकारी घरेलू प्रबंधिका बनाने के लिए लिखी जाती थीं, जिनका लक्ष्य स्त्रियों को स्वाभिमान से रहित एक दब्बू तथा आज्ञाकारी घरेलू जिन्न में बदल देना होता था। जहाँ औरतों के चौबीस घंटों को इस तरह समायोजित किया जा सके जिससे 'घरेलू प्रबंध' से बेफ़िक्र पुरुष ख़ुद को सार्वजनिक क्षेत्र की गतिविधियों में व्यस्त रख सके। इन स्त्रियों से इतना शिक्षित होने की अपेक्षा रहती थी जिससे ये अपने पतियों के साथ 'मधुर संभाषण' कर सकें लेकिन इतना अधिक शिक्षित होने की अपेक्षा भी नहीं की जाती थी कि वे 'मुँह-खोल कर स्टेशनों पर घूमे' और बाहरी दुनिया में दख़ल देने लगें।

श्रीमती हरदेवी, 'स्त्री शिक्षा' की इस अवधारणा से सीधे बहस में न जाते हुए, अपने सृजन से इसका जवाब देती हैं। 'स्त्री शिक्षा' सम्बंधी लेखन का आशय उनके लिए परदे के पीछे बैठकर 'पतिसेवा' और 'संतान पालन' का हैंडबुक लिखना नहीं था। जिस तरह किशोरीलाल गोस्वामी के लिए तरह-तरह की नायिकाओं से इश्क़ फ़रमाना उपन्यास का विषय था, जैसे राधाकृष्णदास के लिए गोरक्षा किसी उपन्यास का विषय था या जैसे भारतेंदु के लिए राधाकृष्ण की भक्ति कविता का विषय थी; ठीक उसी तरह हरदेवी के लिए 'स्त्री शिक्षा' यात्रावृत्त, उपन्यास, पत्रकारिता जैसी हर विधा के केंद्र में थी।
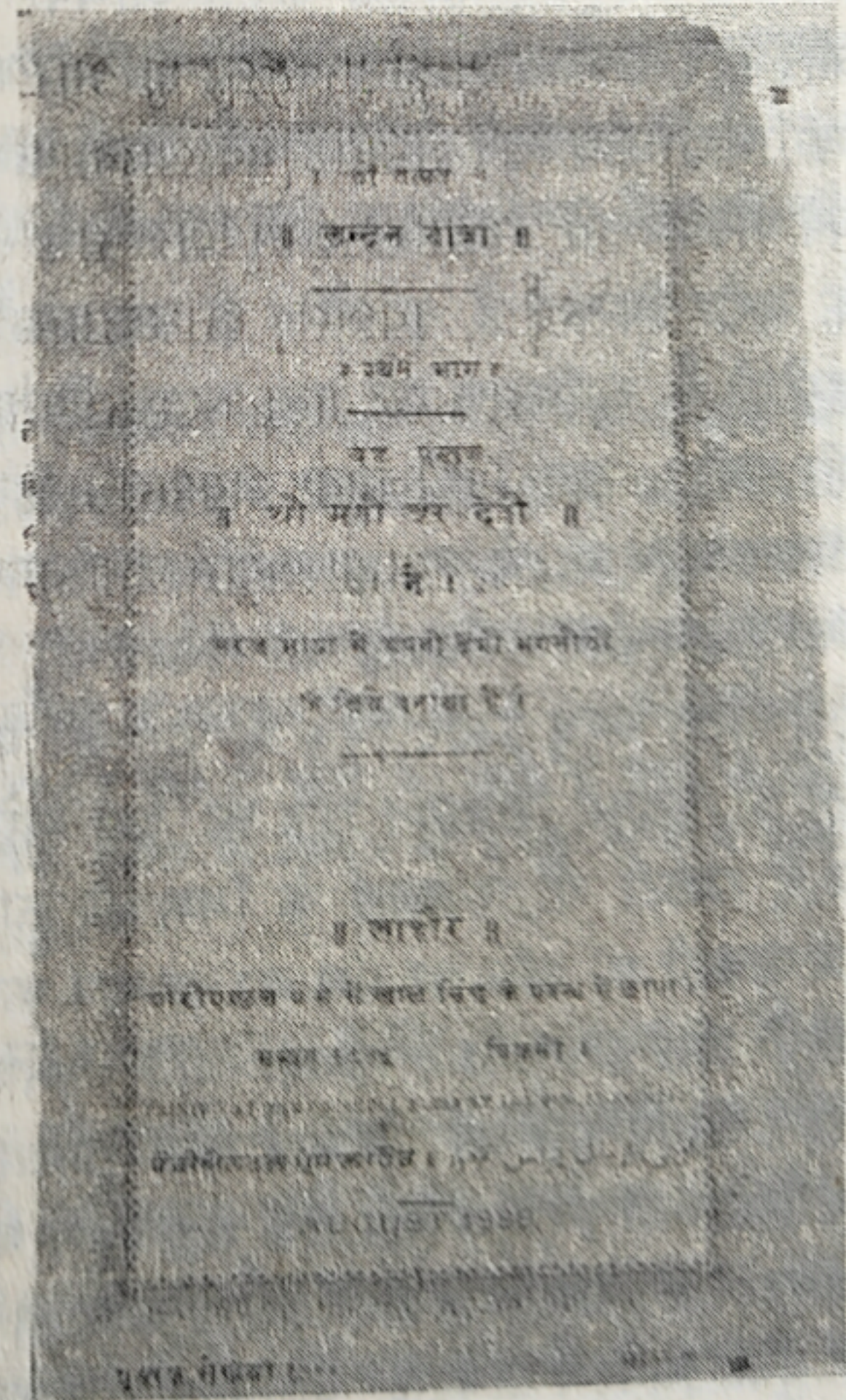
चित्र 1 : लंदन यात्रा, आवरण पृष्ठ

लंदन यात्रा (1888 ई.)

हरदेवी की 'लंदन यात्रा' एक उम्दा यात्रावृत्त भी है और उन्नीसवीं सदी में 'स्त्री शिक्षा' की एक अद्वितीय पुस्तक भी। यह 'अच्छी और बुरी औरत' की आज तक जारी घिसी-पिटी कहानी से अलग कुछ नया और एडवेंचरस पाठिकाओं के सामने रखती है। उन्नीसवीं सदी की 'जनाने' के भीतर क़ैद पाठिका के जीवन में यह एडवेंचर ही तो नहीं था। अपने जैसी एक औरत का रेल में बैठकर बम्बई तक जाना, 'पारसी मित्र' दादाभाई नौरोजी के घर पर ठहरकर बम्बई के बाज़ारों में यों ही घूमना, लड़कियों के स्कूल देखना, लेखिका के कलम से पारसी समाज के बारे में जानना, समुद्र के ख़ूबसूरत दृश्यों और खुली हवा को महसूस करना, स्विट्ज़रलैंड तथा यूरोपीय देशों के गाँवों के बीच से होकर गुज़रना, ज्वालामुखी विस्फोट से नष्ट हो चुके पॉम्पेई शहर को देखना और अपने जैसी एक औरत की कलम से उस नगर का इतिहास जानना; निश्चित रूप से उस दौर की पाठिकाओं को अचम्भित कर देता होगा। सास-बहू के क़िस्से तो वे ख़ूब जानती थीं, लेकिन 'लंदन यात्रा' उनके सामने एक अलग ही दुनिया की तस्वीर पेश कर रही थी। यह एक ऐसी दुनिया थी जिसकी हवा तक जनाने में पैर नहीं रख सकती थी। भगिनी-भाव (Sisterhood) की भावना से सराबोर यह यात्रावृत्त शुरू ही होता है, अपनी 'प्यारी पाठिकाओं' को सम्बोधित करते हुए :

> ''प्यारी पाठिकाओं आज मैं अपनी यात्रा का ब्रत्तांत लेकर तुम्हारी सेवा में उपस्थित हुई हूँ।...परंतु बड़े ही शोक का दिन है कि पहले तो हमारी पंजाब देशीय भगनी समाज में से किसी को दूर देश में जाना ही कम मिलता है और जो कोई तीर्थ यात्रा के नाम से कहीं जाती भी है तो कठन परदे या और कारणों से एक दूसरी के निकट वह ख़ुशी नहि पहुँचा सकती, कियों कि अभी तक न उन का न कोई समाज ही बना है और न सोसाइटी जहाँ भद्र घरों की स्त्रीयें एकत्र होय अपनी प्रत्यागत बैहन के मुह से दूर देश का हाल सुनकर ख़ुश हों तो पस लाचार हो घर में घुट कर रह जाती है, बहुतेरा जी चाहता है पर एक दूसरी के दर्शन तक नहि कर सकतीं॥''[54]

लेकिन हरदेवी ने तो लंदन से लौटते ही स्त्रियों को संगठित करना शुरू कर दिया था और लाहौर में डेढ़ सौ औरतों की सभा भी बनायी थी। फिर सभा सोसाइटी न होने का जिक्र क्यों? क्या यह लाहौर की सीमा से बाहर दूर-दराज़ के क़स्बों और शहरों में रह-रही परदानशीन औरतों तक पहुँचने की एक कोशिश नहीं थी? बाहर की दुनिया से अनजान सात-परदों के भीतर रहने वाली औरतों को हरदेवी, सार्वजनिक जगत में उनकी अनुपस्थिति से वाक़िफ़ कराना चाह रही थीं, जहाँ अपना न्याय माँगने के लिए उन्हें ख़ुद आगे आना था, क्योंकि, ''बताओ किस्से ईस की फ़रियाद की जाय और कौन इस बड़े भारी अभाव को दूर करे। सब कोई अपने-अपने सुख में सुखी हैं।''[55]

सो पुरुष-समाज को 'अपने अपने सुख में सुखी' देख हरदेवी ख़ुद ही अपनी प्यारी भगिनियों तक अपनी यात्रा का वृत्तांत पहुँचाने का उपाय निकाल लेती हैं। उनकी इस लंदन-यात्रा के कुछ दृश्य यहाँ प्रस्तुत हैं :

> ''....सब कुछ देख शाम के पाँच बजे स्वर्ज लैण्ड की गाड़ी में सवार हुए।
>
> प्रिय पाठिका अब हम उस स्वाधीन देश को जा रहे हैं जहाँ कोई राजा या अधिकारी न होकर प्रजा आप ही अपना शासन करती है और प्रकृति ने भी इस पर्वत सम्बंधीय देश को अपने हाथों से सारी चातुर्यता ख़र्च कर सुंदरता का पुंज बनाया है जो पृथवी पर अन्य स्थान में शायद ही होगा।
>
> हमारी गाड़ी अब सुरम्य पर्वत शृंखला के मध्य में सुंदर वन उपवनों में से हो कर जा रही है धन्य है मनुष बुधि जिस ने इस दूर गम्य पर्वत श्रेणियों और उस के शिखरों को विदीर्ण कर मार्ग निकाला है।
>
> सुंदर हरे बड़े ऊँचे ब्रक्षों के वन के वन दोनों तर्फ खड़े हैं जिन में सुंदर नदी नाले लैहराते बल खाते हुए चले गये हैं अनेक भांत के पुष्प सूर्य्य किरण से मुरझाये हुये नीचे पड़े हैं कहीं-कहीं गाय बकरी भेड़ चर रही हैं दूर में पर्वत राजी सुंदर ऊँचे शिखरों को धारण किये जिन पर संध्या काल के सूर्य्य की स्वर्ण किरण पड़ कर और भी सौभा दे रही हैं ऐसा मालूम होता है कि सोने के पहाड़ खड़े हैं। अब जो पर्वत दूर में दिखते थे निकट आने लगे और अच्छी तरह उन के वृक्षादिक दिखते हैं रेल उन के पास ही उन की प्रदक्षणा करती हुई गमन करने लगी और कृमशा उन के ऊपर भी चढ़ना शुरू किया यह देख हृदय भय से काँपने लगा पर सूर्य्य अस्त होने से अंधकार हो गया था इससे बहुत थोड़ी सी बाहर की वस्तुयें नज़र आतीं तो भी गाड़ी का पर्वत शिखरों पर चलना विचार जहाँ से ज़रा सी ठोकर खाने से पुर्जे-पुर्जे उड़ जाते मन डर रहा था, बहुतेरा गाड़ी की खिड़की खोल चारों तर्फ आँख फिहलाये कर देखते पर अब कुछ दिखाई नहीं देता था सर्वत्र अंधकार काली रात में वह पर्वत और भी काले-काले डरावने लगते थे जिन में कहीं-कहीं नदी के वैग का जो पर्वत से जल गिरने में गम्भीर शब्द होता सुनाई देता था।
>
> इस वक़्त सब ने आराम किया कुछ भय कुछ चिंता में थोड़ी ही नींद आयी दूसरे दिन बड़े प्रभात सूर्य निकलने से पेहले ही खिड़की खोल देखा, तो अब हम एक बहुत सुंदर मनोहर पर्वतीय देश में पहुँच गये हैं जिस कि सोभा ने हृदय को ऐसा मोहित किया कि जिस का वर्णन नहीं कर सकती हूँ, गाड़ी यहाँ मंद धीमी गति से चलती है दोनों तर्फ पर्वतों की क़तार है जिन के ऊँचे श्रृंगों को सुफेद बादल लिपट रहे हैं चारों तर्फ मानो रुई धुन कर फेहलाये दी हो सुर्योदय

जान आकाश की तर्फ उड़े जाते हैं ऐसा मालूम होता है कि हमारी गाड़ी के शब्द से भीत होय भाग रहे हैं अनेक भांत के वृक्ष प्राता क़ालीन वायु के झकोर से लैह लहा रहे हैं।''[56]

जेनेवा के जिस होटल में लेखिका ठहरी थी उसके नीचे लगी पैठ[57] में वहाँ की स्त्रियों को स्वतंत्र घूमते देख लेखिका को अपनी देशी बहनों की याद हो आती है, 'जाने कब और किस युग के अंत में उनका उद्धार होगा'!

> ''आज सनीचर का दिन है, इस लिये होटल के नीचे चौक में मार्किट लग रही है बहुत से स्त्री पुर्ष एकत्र हुये हैं यह हम विदेशियों के लिए बहुत तमाशा है, हमारे देश की भाषा में ग्रामीण लोग इसे पैंठ कहते हैं पर यह यूरप के हर नगर ग्रामों में लगती है कारण इतवार को धर्म वार विश्राम का दिन समझ बाज़ार हाट सब बंद हो जाते हैं इस लिये सनीचर के दिन सब ग़रीब अमीर खाने पीने की ज़रूरी चीज़ें ख़रीद लाते हैं, जिस को यहाँ की भाषा में शापिंग बाज़ार कहा जाता है, पर्न्तु हमारे लिए विशेष आश्चर्य की यह बात है कि सौदा बेचने और ख़रीदने वालों में स्त्रियों की ही संख्या बहुत है, पुर्ष तो केविल भार वैहन बोझ उठाना साईस कोच मैन के सिवाये बहुत थोड़े दिखाई देते हैं।
>
> फूल फल मेवा तरकारी मिठाई कपड़ा खिलौना रोटी गोश्त अंडा आदिक सब चिजै बिक रही है, स्त्रियें सुंदर वस्त्र भूषण पैहरे हाथों में वासकिट अर्थात बाँस की पिटारी लिए मन मानी चीजैं ख़रीद 2 कर उनमें धरती जाती हैं, बहुत धनवान स्त्रियें भी जिन के साथ दो चार परिचारका हाथों में वही वासकिट लिये उँगलियों में दो तीन छोटे 2 बालक बालिकाओं को पकड़े पुरण स्वाधीनता से फिर रही है, स्वाभाविक ही खेल प्रिय बालक खिलोने की दुकान पर जा के ठिठक जाते हैं तब माता उनके अभिप्राय को समझ सनेह वश सुनकर उन को इच्छानुरूप खिलोने ले देती हैं जिन्हें देख वै प्रसन्न होये अपनी छोटी वासकिट में धर माता के पीछे चले जाते है और कोई 2 अपने अभीष्ट को ना पाये सुंदर मुखों को आँसुओं से धोये रहे हैं, जो गुलाब के फूल से भी कहीं बढ़ कर लाल हो गया और बहुत ही प्यारा लगता है।
>
> कहाँ तक कहैं इस सौभाग्य देश की स्त्रीयें पूरी स्वाधीनता के साथ जीवन सुख का लाभ लै रही हैं, जिन्हें देख आजन्म पराधीना दुरभाग्य भार्त वासनी भगनीयों का चित्र नेत्रों के आगे आये मनमें अनेक कष्टों को उपजाता है, और ध्यान आता है कि हे जगदीश यदि प्रथवी पर तुमने समान वस्तुयें रची हैं और मनुष्य तो उनकी प्रारब्ध क्यूँ नहीं समान बनाई हम अभागिनी भार्त अबलाओं ने क्या तुम्हारा अपराध किया है जिन की स्वाधीनता को तुमने उन के भाग्य से एक दम जुदा कर दिया, हाय वह पराधीन पशु जीवन कब तक भोगेंगी, कब और किस युग के अंत में उन का उद्धार होगा वह कब मनुष्य योनि में आये जीवन को सफल जानेगी।''[59]

कहना ना होगा, इस यात्रावृत्त का समापन होते-होते हरदेवी की लेखनी द्वारा उकेरे गए देश-दुनिया के यह सजीव दृश्य हिंदी पाठिकाओं को शिक्षित तथा स्वाधीन होने, देश-दुनिया घूम आने की बेचैनी से भर देते रहे होंगे। हरदेवी का बेपरदा लंदन तक यात्रा करना ही उस दौर के हिंदी में हो रहे लेखन को एक ख़ामोश चुनौती थी। उस पर, अपनी यात्रा का ब्योरा लिखकर अपनी 'प्यारी भगिनियों' तक पहुँचा देना क्योंकि, ''विद्वानों ने भी विदेश भ्रमण का यही फल कहा है कि जो वहाँ देखे-सुने उसे ज़रूर अपने मित्रों के समाज में वर्णन कर दे, और इसी में दोनों पक्षों को ख़ुशी भी होती है।''

पाठक स्त्रियों को अपने ही जैसी किसी स्त्री के यात्रा का हाल पढ़कर ख़ुशी भी होगी इसकी परवाह किसे थी? इस एडवेंचर से उपजने वाली ख़ुशी उनके लिए नयी थी, लेकिन निषिद्ध भी। यहाँ 'हैरी पॉटर' की हाउस-एल्फ़ विंकी, याद आ जाती है, ''House-elves are not supposed to have fun, Harry Potter...House-elves do what they are told''(घरेलू-जिन्न से मज़े करने की अपेक्षा नहीं की जाती है, हैरी पॉटर...घरेलू-जिन्न वही करते हैं, जो उनसे (करने को) कहा जाता है)[60]
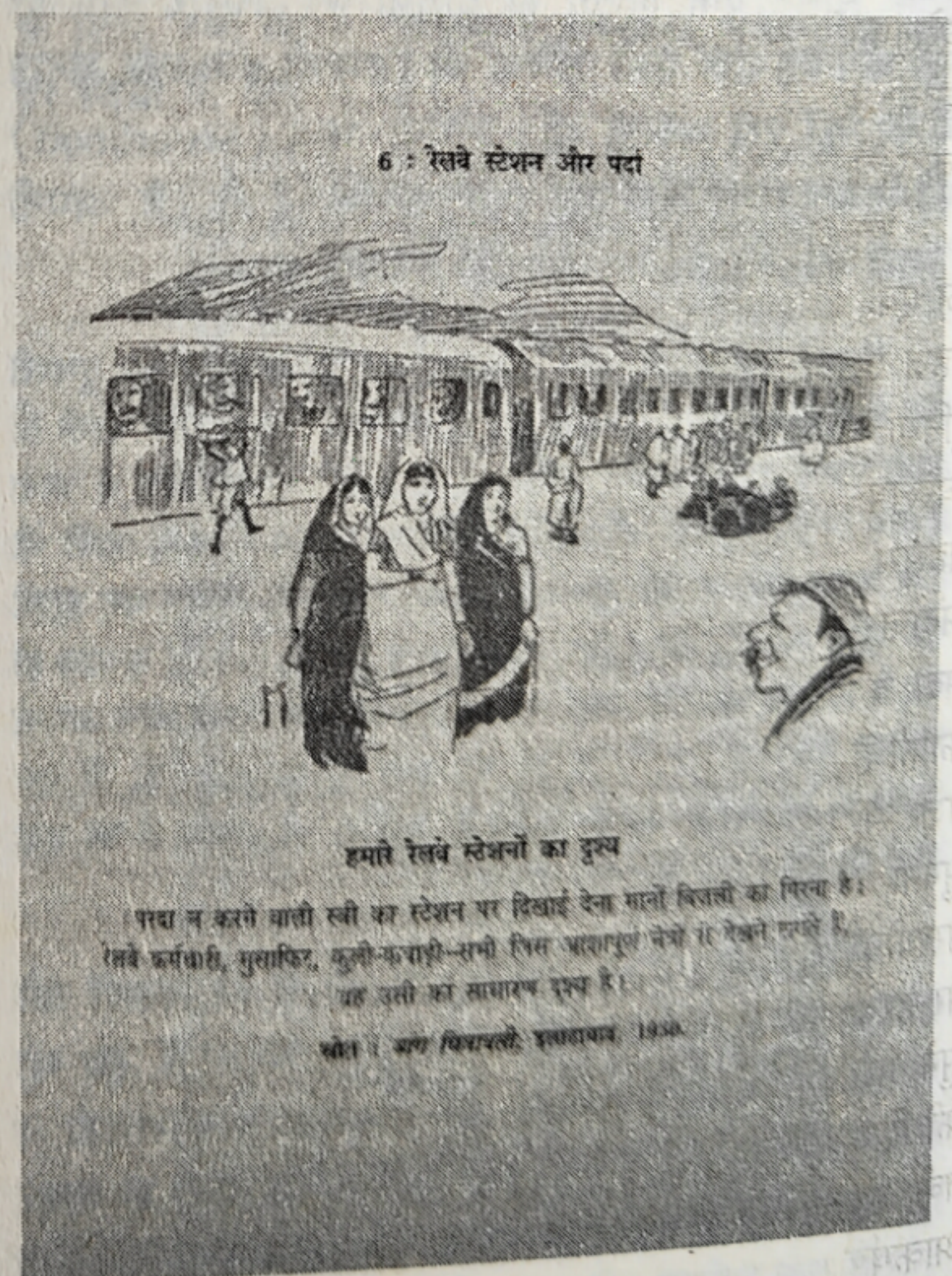
चित्र 2 : व्यंग्य चित्रावली, इलाहाबाद, 1930

हरदेवी की पाठिकाओं की हालत इन हाउस-एल्व्स से अलग नहीं थी। उन्हें मज़े करने या ख़ुश होने की इजाज़त नहीं थी। घर से बाहर निकलने के लिए तो आज भी औरतों के पास कोई 'वजह' होनी चाहिए। लंदन यात्रा के लगभग आधी सदी बाद तक रेलवे स्टेशन पर खड़ा होना या रेलवे में यात्रा करना स्त्रियों के चरित्र के लिए ख़तरा माना जाता था।[61] स्त्री शिक्षा के लिए लिखे गए 'भाग्यवती' उपन्यास की नायिका तीर्थ यात्रा के लिए सपरिवार जाते समय भी रेल में नही चढ़ती, घर की पालकी से इतनी लम्बी यात्रा करती है। भले ही 'भाग्यवती' के लेखक ने इसके लिए कुछ दूसरे तर्क दिए हों लेकिन पुरुषों के साथ एक ही डिब्बे में बैठकर हरदेवी की तरह रेलयात्रा यात्रा करना, उस युग के हिंदी लेखन में एक बड़ी बात थी। 'बंगमहिला' की 'दुलाईवाली' (1907) की घबराहट तो हिंदी के पाठकों को याद ही होगी। प्रेमचंद की कहानी 'दो सखियाँ' (1925) की चंदा, जो ज़नाना डिब्बे में एक पुरुष के चढ़ आने पर, ट्रेन से कूद कर जान देने को उतारू हो गई थी; ये चित्र स्त्रियों की रेलयात्रा को लेकर हिंदी लेखकों के मन-मस्तिष्क में चल रही खींचतान को ही दर्शाते हैं। ऐसे में औरतों के 'घरेलूपन' पर जोर देने वाले पितृसत्तात्मक नैरेटिव के लिए, हरदेवी या रमाबाई द्वारा अपनी यात्रा का वृत्तांत लिखना, एक जवाबी हमले की तरह था।

रेलवे, उन्नीसवीं सदी की एक स्त्री के लिए, यातायात का एक साधन भर नहीं था। न ही, रेलवे स्टेशन यात्रा का महज एक पड़ाव। रेलवे प्लेटफ़ार्म उसके लिए एक दूसरी दुनिया के दरवाज़े की तरह था, जहाँ वह अपने तमाम 'घरेलूपन' के बावजूद, सार्वजनिक जीवन की सजीवता को महसूस कर सकती थी। इससे वाक़िफ़ हरदेवी ने जिस अंदाज़ में अपनी यात्रा का चित्र खींचा है, वह उन्नीसवीं सदी की किसी पाठिका को उद्वेलित कर देने के लिए काफ़ी है। अपने ही जैसी एक स्त्री! एक विधवा स्त्री! की नज़र से शहर, बाग़, स्टेशन, जहाज़, समुद्र, यूरोप; का हाल सुनना, उन्नीसवीं सदी की एक परदानशीं पाठिका को, उसकी पराधीनता का अहसास करा देने के लिए काफ़ी था। उस पर हरदेवी की कुशल वकालत! पाठिका सुने तो किसकी सुने, परदे के भीतर रहकर पतिसेवा करने की भारतेंदु हरिश्चंद्र की शिक्षा या परदे को शास्त्र विरुद्ध बताने वाले हरदेवी के तर्क, जिनके साथ जुड़ा हुआ है, बाहर की दुनिया का असीम आकर्षण। फिर भी अगर मन में कुछ शंका रह जाए, तो उसका भी बंदोबस्त है। ऐसी महिलाओं से हरदेवी के सवाल-जवाब जहाँ ''मानो अभी प्राता काल होआ ही न था'' :

''उन बिचारी जिन को कठिन परदे के कार्ण सिवाये मौत के कोई घर से बाहर निकाल नहि सकता कभी स्वप्न में भी नहि विचार सकती कि एक हमारे जैसी परदे में रहने वाली स्त्री इतनी दूर विदेश में जाने का साहस कर सकती है। जो किसी अंग्रेज़ की आवाज़ सुन कर रेल गाड़ी के अंदर हीं घभरा जाती हैं और सूरत देख रंग फ़क हो जाता है उन के निकट जहाज़ में अंगरेजों के साथ बैठ कर जाना एक स्त्री का असम्भव बात थी वे यह कहती थीं।

प्रश्न—क्या तुमने विलायत जाने के लिए और रास्ते की तकलीफ़ें समुंदर से डर पानी में जाने को अपना दिल मज़बूत बना लिया है॥ अंगरेजों में मुँह खोलकर कर तुमसे कैसे बैठा जाएगा। उन से बात चीत करते हुए तुम्हें डर नहीं लगेगा।

उत्तर—दूर देश जाने में कोई डर की बात नहीं हैं किंतु एक प्रकार की ख़ुशी जो विदेशों में नई चीज़ को देखने से हुआ करती है होगी और जो लोग रात दिन उन में आते जाते हैं वै भी हमारे तुम्हारे समान मनुष्य हैं भेद केवल इतना ही है कि वे पूर्ण स्वाधीनता से प्रथवी में भ्रमन कर अनेक विद्या लाभ कर स्वेच्छा से सुखी होते हैं। हम तुम जन्म से एक ही घर में रहने के कार्ण उस्से दूर हैं और विचार भी नहीं कर सकतीं। अंगरेज जाति के स्त्री पुर्ष भी हमारे ही समान मनुष्य हैं उन से बात चीत करने में कोई डर की बात नहि और रहा परदा जिसे आज तुम अपनी पुरानी चाल कहती हो यह हमारे प्राचीन आर्य्यों की रीत नहि है। मुसलमानों से हमारे बाप दादाओं ने इसे सीखा है तुम ख़ुद सोच सकती हो जिस जाती से उन ज़बर दस्तों का ज़्यादा वास्ता रहा है उन ही में उन के ज़्यादा दस्तुर भी पाए जाते हैं। मुसलमानों के राज से हमारी कोम कायस्थों का ज़्यादा उनसे बरताव था इसी लिये यही आज सबसे बढ़कर परदे को मन्ते हैं। पर इस वक़्त नियाय शील अंगरेजों के राज में उस पुरानी दुखदाई रसम में अपनी बहु बेटियों को क़ैद रखना जिस्से सिवाये उन की शिक्षा के बहुत सा उनका अपना भी नुक़सान होता है।

इस तरह के जवाबों से नौजवान लड़कियाँ तो ख़ुश होतीं पर बड़ी-बूढ़ी नाक भौं चढ़ाय ख़फ़ा हो कह उठतीं आज तक तो हमारे कायस्थों में से किसी ने ऐसा किया नहि कायस्थ की लड़की ने तो अभी तक घर से बाहर पाँव धरा नहि है हमें तो राम जी ये वकत दिखायो मत। इस प्रकार की बहुत तानो से मिली हुई बातें कहतीं जिन पर रोना और हँसी आती थी॥''[65]

इस पर बहस हो सकती है कि हिंदुओं में परदा पहले से था या मुसलमानों की देखादेखी हुआ लेकिन ब्रह्म समाजी हरदेवी की यह बात अपनी दौर के दूसरे सनातनी लेखकों से अधिक सुलझी हुई है। वे यह नहीं कह रहीं कि मुसलमानों ने बलात्कार करना शुरू कर दिया था जिससे परदे का रिवाज पड़ा, बल्कि वे इसे हिंदुओं द्वारा शासक मुसलमानों की नक़ल का नतीजा बता रही हैं। उस दौर में जब हिंदी के लेखक मुसलमान पुरुषों को हिंदू औरतों की यौनिकता के

लिए ख़तरा बताने का कोई मौक़ा नहीं चूकते थे, जिस पर चारु गुप्ता ने विस्तार से विचार किया है। हरदेवी बेशक अधिक सुलझी हुई जान पड़ती हैं। हरदेवी को इन 'बड़ी बूढ़ियों' के ताने पर रोना ज़रूर आता था, लेकिन पितृसत्ता की संरचना को वे अपने दौर के दूसरे लेखकों और बहुत से आज के लेखकों से भी अधिक गहराई से समझती थीं। इन तानों के बावजूद हरदेवी 'औरतें ही औरतों की दुश्मन होती हैं' वाले निष्कर्ष की ओर नहीं झपटतीं और बुजुर्ग औरतों के इन रूढ़िवादी ख़यालों को अशिक्षित होने का नतीजा मानती हैं।

लंदन जुबिली (1889)

लंदन यात्रा के अंतिम पृष्ठ पर हरदेवी ने सूचना दी थी कि वे अपने लंदन प्रवास का ब्योरा देते हुए एक और पुस्तक लिखेंगी। यह दूसरा खंड 'लंदन जुबिली' के नाम से 1889 में प्रकाशित हुआ। संयोग से हरदेवी के लंदन प्रवास के दौरान ही रानी विक्टोरिया का जुबिली समारोह मनाया गया था। यह एक विशाल आयोजन था। इस पुस्तक में इसी समारोह को केंद्र में रखा गया है। निश्चित रूप से पुस्तक में हरदेवी के लंदन प्रवास की दूसरी सूचनाएँ भी मौजूद होंगी। दुर्भाग्य से यह पुस्तक अभी हम देख नहीं सके हैं। 1890 के 'कलकत्ता रिव्यू' में इसकी एक संक्षिप्त समीक्षा ज़रूर मिली है।

हुक्मदेवी : हिंदू धर्म की उच्चता में एक सच्ची कहानी (1892)

'हुक्मदेवी : हिंदू धर्म की उच्चता में एक सच्ची कहानी' 1892 में प्रकाशित एक उपन्यास है। जिसकी रचना बतौर नज़ीर की गई है जिससे पाठकों को इस बात से सहमत किया जा सके कि 'यौन शुचिता' जैसे मूल्यों की रक्षा के नाम पर स्त्रियों को क़ैद रखने से कुछ नहीं होता। यह उपन्यास भारतेंदु जैसी सोच रखने वाले विद्वानों के इस सूत्र कि ''सती स्त्री तभी तक है जब तक उनको मौक़ा नहीं मिलता'' का प्रतिवाद करते हुए लिखा गया है। उपन्यास के आवरण पृष्ठ और अंतिम पृष्ठ पर दिया गया यह श्लोक ही इस उपन्यास का सूत्र है :

''जो स्त्रियें लोकभय अथवा सम्बन्धियों की रक्षा से धर्म्म को बचाये रखती हैं वह सच्ची धर्म्मिका स्त्री कहलाने के योग्य नहीं। किंतु जिनकी आत्मा में धर्म्म की श्रद्धा है सारे हृदय में प्राणों से भी अधिक जिन्हें अपना धर्म्म प्यारा है। वे कठिन से कठिन परीक्षा और घोर प्रलोभनों में पड़कर भी इसकी रक्षा करती हैं वही सच्ची धार्मिका और सती स्त्री है उन्हीं का जीवन प्रशंसनीय है और वे ही इस संसार में धन्य हैं।

(श्लोक)

अरक्षितागृहेरूद्रा: पुरुषैराप्तकारिभि:
आत्मानमात्मनायास्तु रक्षेयुस्ता:सुरक्षिता: ''[67]

हुक्मदेवी की कहानी कहते हुए लेखिका का पूरा ज़ोर यह दिखाने पर है कि अगर स्त्री 'सतीत्व' या यौन शुचिता जैसी मान्यताओं में यक़ीन रखती है तो जीवन की कठिन से कठिन परिस्थिति में भी हुक्मदेवी की तरह इनका पालन करती है और अगर उसे इनका अतिक्रमण करना हो, तो वह हुक्मदेवी की बहन की तरह पति के संरक्षण में रहकर भी 'व्यभिचार, में लिप्त रह सकती है। वास्तव में यह उपन्यास बड़ी ही सूझबूझ और रणनीति के साथ लिखा गया था जिससे परदे की निरर्थकता को सिद्ध किया जा सके। यहाँ भी 'सीमंतनी उपदेश' की तरह ही परदे की आड़ में होने वाला 'व्यभिचार' केंद्र में है। जहाँ एक विधवा स्त्री के जीवन की कठिनता पाठकों के सम्मुख रखने की कोशिश की गई है।

HUKUM DEVI
A TRUE TALE OF A VIRTUOUS
HINDU LADY
BY
SRIMATI HARDEVI
हुक्मदेवी
[illegible]
इलाहाबाद
[illegible]
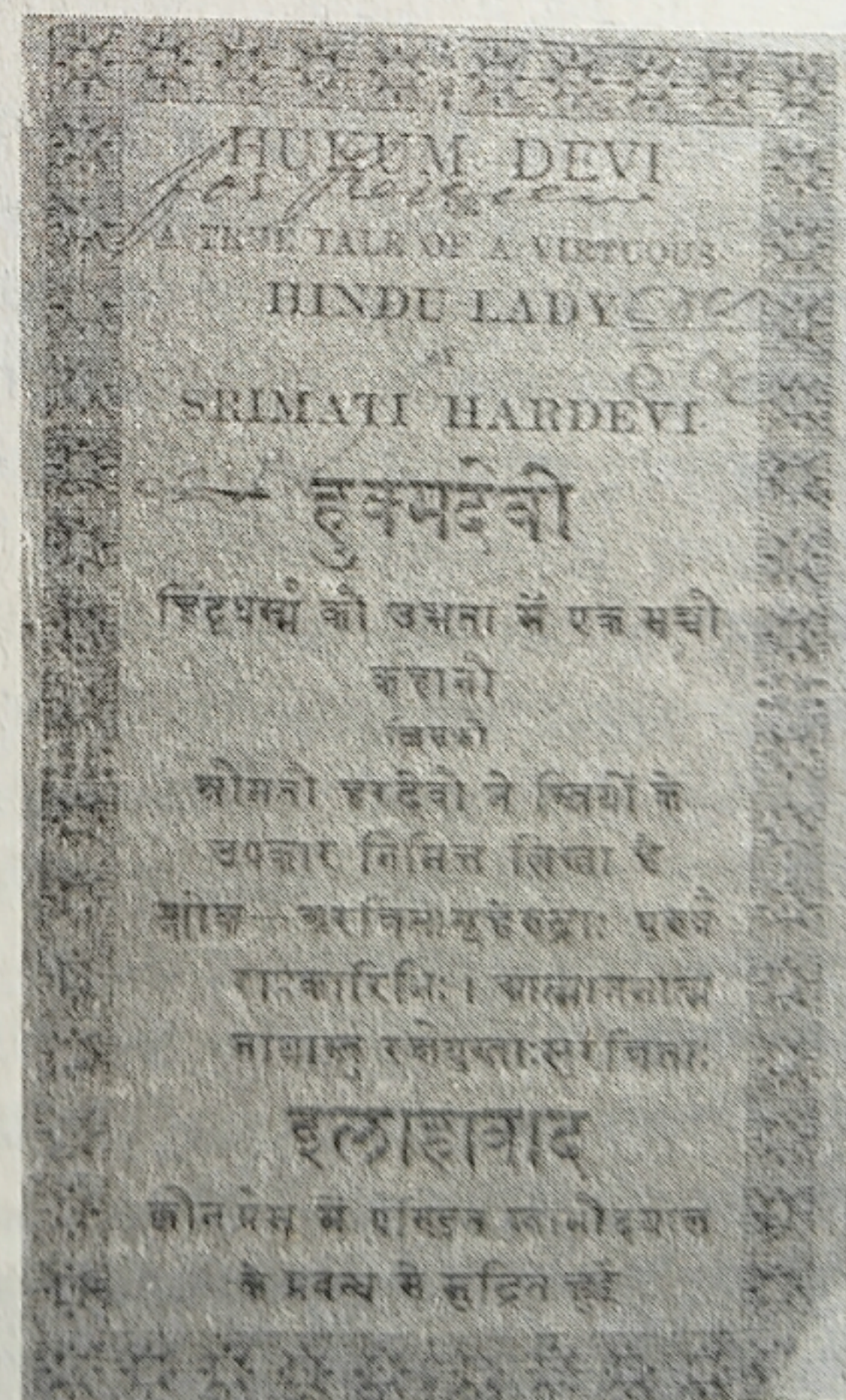
चित्र 3 : हुक्मदेवी, आवरण पृष्ठ

''स्त्रियों पै सामाजिक अन्याय'' (1892)

'सीमंतनी उपदेश' की युवा हिंदू लेखिका जैसी बेबाक़ी से स्त्री की यौन इच्छाओं का स्वीकार हरदेवी के प्रौढ़ हो चले लेखन में नहीं है, लेकिन विधवाओं के पुनर्विवाह का वे उसी तरह समर्थन करती रही हैं। हरदेवी ''स्त्रियों पै सामाजिक अन्याय'' में जिन सात अन्यायों को गिनाती हैं, उनमें से एक 'पुनर्विवाह से रोकना' भी है। यह पुस्तिका शुरू से अंत तक 'सीमंतनी उपदेश' की याद दिलाती है। 1892 में इलाहाबाद से प्रकाशित ''स्त्रियों पै सामाजिक अन्याय'' नामक इस पैमफ़्लेट में स्त्रियों पर होने वाले 7 सामाजिक अन्यायों की चर्चा की गई है,

1. पुत्र कन्या के पालन में भेद रखना।
2. विद्या से वंचित रखना।
3. अज्ञानावस्था में विवाह देना।
4. अयोग्य वर से विवाह कर देना।
5. पुनर्विवाह से रोकना।
6. स्वामीधन और पिता के धन से भाग न देना।
7. सहधर्ममिणी स्त्री के जीवित दूसरा विवाह कर लेना।

'न्यायशील देशहितैषी सज्जनपुरुषों'[68] को सम्बोधित इस पैमफ़्लेट में हरदेवी ने सीमंतनी उपदेश की तरह मनु को ख़ुदगर्ज़ या मतलबी कहकर सीधे ख़ारिज नहीं किया है। बल्कि एक मँजे हुए ब्रह्मसमाजी की तरह शास्त्रार्थ की मुद्रा अपनायी है। मनु के ही श्लोकों को उद्धृत करते हुए मनु की पुस्तक 'धर्मशास्त्र' को फ़र्ज़ी क़रार दिया है :

''हमें उन मनु आदिक महात्माओं से कभी ऐसे निर्दय शास्त्र की आशा नहीं है। यह किसी स्वार्थप्रिय स्त्रीकुल के शत्रु का रचा हुआ धर्मशास्त्र जिसे अधर्मशास्त्र कहना चाहिए, मालूम होता है। अज्ञानी और मूर्ख विचारहीन पुरुष इसी की आज्ञाओं को प्राचीन मत समझ स्त्रियों के साथ अनेक प्रकार के अन्याय कर रहे हैं।''[69] स्त्री और पुरुष के जैविक भेद का तर्क, जो उस दौर में एक प्रमुख तर्क हुआ करता था, हरदेवी के पास उसका भी उत्तर है। 'कंडीशनिंग' का वर्तमान नारीवादी तर्क, जिसमें स्त्रियों की वर्तमान बनावट तथा दुर्बलता पितृसत्तात्मक ढाँचे में होने वाली कंडीशनिंग का नतीजा मानी जाती है, इसे हरदेवी के लेखन में भी देखा जा सकता है : ''अब रही शरीर की दुर्बलता सो मुद्दत के पालन के भेद का यह परिणाम है।''[70]

हरदेवी कोई भी बहाना कोई भी तर्क अनछुआ नहीं छोड़ना चाहतीं, जिससे ''प्रकृति और युक्ति से स्त्रियों की समता पुरुषों के बराबर सिद्ध'' होने में कोई कसर रह जाए। सार्वजनिक क्षेत्र में साहित्य, पत्रकारिता तथा पर्चेबाज़ी के रास्ते यह घरेलू क्षेत्र का दख़ल था। हरदेवी का लेखन उन्नीसवीं सदी की शिक्षित महिलाओं के निजी तथा सार्वजनिक का भेद मिटा देने की कोशिश को दर्शाता है। जहाँ 'निजी क्षेत्र में दक़ियानूसी बने रहकर, सार्वजनिक जगत में समाज-सुधार की शेखी बघारने वाले पुरुषों को वे आड़े हाथों लेती है :

''सुधार और सभ्यता प्रथम अपने आचरण और घरों की होनी चाहिए। कोई बुद्धिमान मनुष्य अपना घर कूड़े कर्कट से भरा देख पहिले उसे सफ़ा न कर राजमार्ग को नहीं झाड़ता फिरता। या घर के लोगों को उपवास कराय गली कूचे में भिखारियों को धन लुटावे। ऐसा करने वाले को कोई अक़्लमंद नहीं कहता।''[71]

हरदेवी की यह चिंता, उस युग की स्त्रियों की चिंता थी। घर से बाहर सार्वजनिक सभाओं तथा आलेखों में विधवा विवाह, स्त्री शिक्षा आदि की बात करने वाले पुरुष स्वयं अपने घर में लकीर के फ़कीर बने हुए थे। इतने ऊँचे सरकारी ओहदे पर कार्यरत तथा सुशिक्षित राय बहादुर कन्हैयालाल ने अपनी बेटी हरदेवी का विवाह चौदह वर्ष में ही कर दिया था। 'सीमंतनी उपदेश', 'स्त्री विलाप', 'हुक्मदेवी' तथा 'स्त्रियों पै सामाजिक अन्याय' में हर जगह विधवा जीवन के दुःख-तकलीफ़ें ही केंद्र में हैं। सब कहीं विधवा जीवन की कहानी कही गई है। यह संभवत: हरदेवी की अपनी स्मृति है, निजी स्मृति जो उन्हें 'सार्वजनिक' तथा 'निजी' की लौह दीवार खींचने वाले पुरुषों के प्रति आक्रोश से भर देती है और बहुत संयत भाषा में लिखने के बावजूद अंत-अंत तक वे बिफर पड़ती हैं :

''ऐ देशहितैषी सभ्यगणों एक क्षण के लिए ज़रा परदे के भीतर उस सातवीं कोठरी में अपनी स्त्रियों की दशा चलकर देखो और फिर सोंचो कि तुम दूसरों की दृष्टि में कहाँ तक सभ्यता, योग्यता कहलाने के अधिकारी हो। इसमें कुछ शक नहीं है कि बाहर की आडंबरता और ऊँची घोसना मनुष्य के भीतरी रूप को कुछ देर के लिए दूसरों की दृष्टि में छिपा देती है पर यह थिएटर का सा खेल कब तक काम देगा। जब उसका भीतरी रूप खुल गया तो दूसरे की दृष्टि में उतना आदर नहीं रहता।''

दूसरों की दृष्टि में अनादर। यही डर तो उस दौर के शिक्षित मध्यवर्गीय हिंदू पुरुषों को खाए जा रहा था। अंग्रेज़ों के सामने असभ्य या क्रूर कहलाना, उनके लिए असह्य था। इसी झेंप को मिटाने के लिए शास्त्रों की 'आधुनिक' व्याख्याएँ की जा रही थीं, ताकि एक 'गौरवमयी' अतीत की तस्वीर खींची जा सके और अपनी स्त्रियों की दुर्दशा

का ज़िम्मेदार मुसलिम शासकों को बताया जा सके। हरदेवी ने 'सभ्य' और 'सुशिक्षित' पाठकगणों को बार-बार इसी सभ्यता की दुहाई दी है।

पत्रकारिता भी हरदेवी की कुछ ऐसी ही थी। 'भारत भगिनी' के एक विज्ञापन में इसके बारे में कहा गया है :

> ''यह पत्र नागरी अख़बारों में जो आजकल हिंदोस्तान में जारी है उनमें से यही एक अख़बार स्त्रियों के लिए निकलता है...स्त्रियों का पूरा चित्र सर्वसाधारण में दिखलाना इसी अख़बार का काम है। और पोलिटकल मामलात के बाबत सिर्फ़ उसी क़दर लिखा जाता है जहाँ तक औरतों से ताल्लुक़ है।''[73]

क्या यह औरतों को 'पोलिटकल मामलात' से काट देने की कोशिश थी? उस वक़्त स्त्री शिक्षा की किताबों तथा पत्रिकाओं का इस मसले पर क्या रवैया था? क्या भारतेंदु ने बालाबोधिनी में 'पोलिटकल मामलात' पर चर्चा की थी? या किसी अन्य 'स्त्री शिक्षा' की किताब में? नहीं। दरअसल हरदेवी द्वारा 'भारत भगिनी' को केवल 'औरतों से ताल्लुक़' रखने वाले 'पोलिटिकल मामलात' पर केंद्रित रखना, राजनीतिक विषयों से स्त्री को काटने की नहीं, स्त्रियों को अपने से जुड़े राजनीतिक मसलों से वाक़िफ़ रखने की कोशिश थी जो पितृसत्ता के लिए एक ख़तरनाक क़दम था। 'बालाबोधिनी' की तरह 'पातिव्रत धर्म' या 'शिशु पालन' पर लेख न लिखकर, 'भारत भगिनी' में हरदेवी स्त्रियों से जुड़े हरेक गम्भीर या मामूली विषय पर विस्तार से चर्चा करती थीं। यह केवल महिलाओं का राजनीतिकरण नहीं था, राजनीति को सार्वजनिक से 'निजी' के दायरे तक खींच लाना भी था। 'The Indian Magazine and Review, 1891' London में प्रकाशित एक रिपोर्ट में बताया गया है, कि किस तरह हरदेवी लगातार लेख लिख कर 'एज आफ़ कंसेंट बिल' के लिए माहौल तैयार करने की कोशिश कर रही थीं :

> ''कुछ हफ़्तों पहले भारत सरकार को 'एज आफ़ कंसेंट बिल' पास करने पर धन्यवाद देने के लिए लाहौर में स्वर्गीय राय बहादुर कन्हैयालाल के आवास पर भारतीय महिलाओं की एक सभा का आयोजन हुआ था। एक प्रभावशाली भाषण में, श्रीमती हरदेवी ने कहा, कि वे लम्बे समय से प्रार्थना कर रहीं थीं कि सरकार को बाल विवाह को समाप्त करने में सहायता करनी चाहिए और यह कि वे ख़ुश हैं कि प्रस्तावित योजना अब क़ानून बन गई है। इस विषय पर वे कई बार इंडियन मैगज़ीन में लिख चुकी हैं (जो तब द जर्नल आफ़ द नेशनल इंडियन एसोसिएशन कहा जाता था) उन्होंने इस उद्देश्य के लिए बी.एम. मालाबारी के गम्भीर प्रयासों का उल्लेख किया और सामाजिक प्रश्नों के संदर्भ में भारत सरकार के प्रति अपनी आस्था और सहानुभूति ज़ाहिर की।''[74]

तिलक से लेकर प्रतापनारायण मिश्र और ख़ुद हरदेवी के पति रोशनलाल तक हर कोई जिस 'सहवास बिल' को अपने घरेलू क्षेत्र में हस्तक्षेप मान कर उसका विरोध कर रहे थे, हरदेवी द्वारा उसी सहवास बिल का समर्थन करना, सोच-समझ कर 'घरेलू' दायरे तक प्रशासन को खींच लाना था। अपनी पत्रिका 'भारत भगिनी' में सामान्य रिपोर्टिंग भी हरदेवी कुछ इस अंदाज़ में करती थीं, कि उनका मंतव्य छिपाए नहीं छिपता था। 1901 के कांग्रेस अधिवेशन की जो रिपोर्ट उन्होंने 'भारत भगिनी' में प्रकाशित की है, उसमें 'पिंजरा' शब्द का अद्भुत इस्तेमाल ध्यान खींच लेता है। भला और कौन था, उस समय हिंदी पत्रकारिता में जो इतनी सजग रिपोर्टिंग करता? यह स्त्री स्वातंत्र्य के लिए 'प्रतिबद्धता' के बिना सम्भव नहीं था :

नेशनल कांग्रेस

गत मास में नेशनल कांग्रेस का जलसा बड़ी धूम-धाम के साथ बंगाल की राजधानी कलकत्ता में समाप्त हुआ, भारत वर्ष के सारे प्रांतों से अच्छे-अच्छे विद्वान और प्रतिष्ठित लोग इसमें एकत्र हुए, सुप्रसिद्ध पारसी जाति के भूषण मिस्टर वाचा सभापति थे सर्व साधारण की सम्मति से बड़े 2 मंतव्य पास किए गए। स्त्रियों के बैठने को सभापति के कुछ फ़ासले पर परदे का एक पिंजरा बनाया गया था जिसके तीन तरफ़ कनात और आगे चिकों के ऊपर जाली के परदे लगाए गए थे जिस में से बाहर के आदमी उन को नहीं देख सकते थे, वे भीतर से सब कुछ देखती थीं, परंतु बहुत सी स्त्रियों को परदे का पिंजरा पसंद नही आया उन्होंने चिकों को उठा दिया, दूसरे दिन क़रीब-क़रीब सारी स्त्रियाँ परदे के बाहर बैठीं और पिंजरा खाली पड़ा रहा॥''[75]

स्त्रियों के बैठने की परदे वाली व्यवस्था को पिंजरा शायद ही 'हिंदी नवजागरण' के किसी लेखक ने लिखा होगा। इस पिंजरे का खाली पड़ा रहना एक ख़बर कैसे हो सकती है, इसे उन्नीसवीं सदी की एक महिला सम्पादक ही बता सकती थी।

हिंदी की यह भी एक शैली थी!

''बहू ने पहले ही घर में घुसते इस मंत्र को पढ़ा :
क्या सास तुम मटको चटको क्या मटकाओ कूल्हा।
डोले में से जब उतरूँगी अलग धरूँगी चूल्हा।''[76]

× × ×

॥ विज्ञापन ॥

विदित हो कि भारत भगिनी नामक मासिक पत्र चार वर्ष से श्रीमती हरदेवी लाहौर से प्रकाशित करती है। इसमें इस देश की स्त्रियों के लिये विद्या धार्मिक सम्बन्धीय अच्छे २ लेख छपते हैं और उनकी वर्तमान दशा सर्वसाधारण लोगों में प्रगट करना भी इसका उद्देश्य है। एक रुपया आठ आना मात्र इसका वार्षिक मूल्य है। स्त्रीशिक्षाके बढ़ाने और देशमें उसका प्रचार करनेवालों को इसका ग्राहक जरूर बनना चाहिये। इस देश की स्त्रियों के मध्य उनकी सच्ची अवस्थाका पूरा चित्र लोगों को दिखानेवाला यही एक पत्र है। और मातृभाषा की स्त्रियोंके लिये भी यही एकमात्र पत्र है जहाँ हमारे भाई अपने लिये अखबारों में से एक अखबार लेतेहैं वहां अपनी स्त्रियों के लिये इस पत्र के ग्राहक जरूर बनें। मैनेजर भारत भगिनी [illegible] इलाहाबाद के पते से मिलसकती है। और पिछले वर्षों की पत्रिका भी हमारे पास मौजूद है जिस किसी सज्जन की इच्छा हो इस पते से मंगा लें।

श्रीमती हरदेवीकृत पुस्तक भी हमारे पासमें मिल सकती है॥

चित्र 4: हुक्मदेवी उपन्यास में छपा 'भारत भगिनी' का विज्ञापन

"पहले तो खाविंद की माँ बहन चैन नहीं लेने देतीं। हर वक़्त ताने दिया करती है। यह विवाहिता नहीं धरेल है। ऐसी बहुत फिरा करती हैं। जिसने एक के करने से दूसरा किया उसका क्या ऐतबार है

वाह री औरत तेरा दीदा
एक मरा तो किया दूजा।

जब औरत एक से खिसी
जैसे सत्तर वैसे अस्सी।"[77]

यह उन्नीसवीं सदी की एक स्त्री द्वारा कही जा रही कहावतें हैं,जो सीमित ही सही लेकिन 'जनाने' के भीतर के बोलचाल की झलकियाँ दिखला जाती हैं। 'हिंदी नवजागरण' के गद्य की जीवंतता तथा लोक से उसके जुड़ाव की हम अक्सर चर्चा किया करते हैं लेकिन शायद ही हमने कभी ग़ौर किया हो कि हिंदी के सहृदय साहित्यकारों के सधे हुए हास-परिहास से अलग भी जनाने के भीतर एक भाषायी-संसार था और अगर फैलन की मानें तो यहाँ की शब्द-सम्पदा क़िस्से, कहावतें; अधिक संरक्षित और अधिक आदिम थे। हालाँकि हरदेवी की भाषा जनाने की भाषा का प्रतिनिधित्व करने में समर्थ नहीं है क्योंकि उनकी तालीम और परवरिश पूरी तरह बाहर की दुनिया से जुड़कर हुई थी जिसे अगर हम मर्दों की दुनिया कहें तो कुछ ग़लत न होगा। लेकिन एक महिला होने के नाते हरदेवी अपने लेखन में उन शब्दों-लहजों-तानों-कहावतों को ले आईं जो कभी उन्होंने अपनी माँ या सास या घर की दूसरी स्त्रियों से सुने होंगे।

उन्नीसवीं सदी की भाषाई राजनीति से दूर एक शैली जिसमें उर्दू के शब्द भी है और संस्कृत भी, हरदेवी की रचनाओं में देखी जा सकती है। जब जैसी विधा हो या जैसे पाठक। हरदेवी का लेखन उन्नीसवीं सदी के भाषा विवाद की दृष्टि से काफ़ी महत्वपूर्ण है। उनकी किताबों में प्रयुक्त भाषा में अत्यधिक विविधता दिखती है जिसके कई सम्भावित कारण हो सकते हैं। कुछ तो हरदेवी की भाषा विधा के हिसाब से बदली है और कुछ समय के साथ। पंजाब में आर्य समाज का असर 1880 के बाद ही बढ़ने लगा था जिसने पंजाब के हिंदीभाषी समाज की भाषा पर भी असर डाला था और यह असर हमें हरदेवी की भाषा में भी दिखाई देता है। कई बार 'सीमंतनी उपदेश' की तुलना बाद की किताबों से करने पर यह दिखाई देता है कि हरदेवी शुरू में ख़ासी उर्दूनिष्ठ भाषा लिखा करती थीं किंतु बाद में उनकी हिंदी आर्यसमाज के प्रभाव वाली संस्कृतनिष्ठ हिंदी हो गई। उनके लेखन को ध्यान से देखने पर एक दूसरी वजह भी समझ में आती है। 1882 में प्रकाशित 'सीमंतनी उपदेश' की उर्दूनिष्ठ शैली से एक ही वर्ष पूर्व हरदेवी की एक और किताब आयी थी—'स्त्री विलाप'। 'स्त्री विलाप' की भाषा ध्यान देने योग्य है। इसके वाक्य-विन्यास तथा भाषा में जितनी 'सीमंतनी उपदेश' की उर्दूप्रधान शैली की छाप है उतनी ही संस्कृत शब्दावली से युक्त भी है। ग़ौरतलब है कि यह पुस्तक 1881 में शाहजहाँपुर के 'आर्यदर्पण प्रेस' से छपी थी। इसी तरह 'हुक्मदेवी' या 'स्त्रियों पै सामाजिक अन्याय' की संस्कृतनिष्ठ भाषा के आधार पर यह समझ लेना कि हरदेवी हिंदी के उर्दू-विरोधी शुद्धतावादी धड़े में शामिल हो गई थी, भी ठीक नहीं लगता। 1892 में ही संस्कृतप्रधान खड़ी हिंदी में ये किताबें लिखने के साथ ही हरदेवी अख़बार भी निकाल रही थीं जहाँ वे लगभग आधुनिक तरह की हिंदी लिखने लगी थीं लेकिन विषय की माँग पर उर्दू के शब्द तथा शैली बेझिझक इस्तेमाल कर लिया करती थीं। उदाहरण द्रष्टव्य है :

"नवाब की मृत्यु—भूपाल की बेग़म साहिबा के पति नवाब सुल्तान दूल्हा साहब गत शनिवार को इंतक़ाल कर गये। सारे भूपाल में इस नागहानी मौत का शोक फैला हुआ है।"[78]

ऐसे में हमारा मानना है कि हरदेवी विधा और पाठकों को ध्यान में रखकर भी भाषा का चुनाव करती थीं जिसमें बेहिचक उर्दू के लहजे तथा फ़ारसी के शब्दों के साथ ही संस्कृत के शब्दों, श्लोकों तथा सूक्तियों का इस्तेमाल शामिल था।

यह तथ्य कि हरदेवी की शुरुआती हिंदी अधिक उर्दूनिष्ठ है, दो वजहों की ओर इशारा करता है। पहला, फ़ारसी के शायर तथा उर्दू में इतिहास पुस्तकें लिखने वाले पिता कन्हैयालाल के साथ एक ही छत के नीचे रहते हुए हरदेवी के शुरुआती हिंदी लेखन पर उर्दू की छाप आना स्वाभाविक ही था। दूसरी वजह थी, अठारह-उन्नीस वर्षीय कायस्थ युवती हरदेवी की पारिवारिक पृष्ठभूमि। यहाँ याद दिलाने की ज़रूरत नहीं कि अपने उर्दू और फ़ारसी के प्रयोग के कारण कायस्थ समुदाय को 'भारतेंदु मण्डल' के लेखकों से कितनी- कितनी गालियाँ सुनने को मिलीं थीं। आज की हिंदी के अभ्यस्त पाठक को सम्भव है 'सीमंतनी उपदेश' की भाषा अधिक उर्दूप्रधान लगे, किंतु पुस्तक को उसके ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में रखकर पढ़ने पर सम्भवत: हम उन्नीसवीं सदी के पश्चिमोत्तर प्रांत के शिक्षित कायस्थ परिवारों में बोली जाने वाली खड़ी बोली हिंदी को जान सकें। जिस तरह आज की सैद्धांतिक बहसें अंग्रेज़ी शब्दों के बिना सम्भव नहीं हुआ करतीं। कमोबेश यही हाल उस समय की खड़ी बोली का था जिसमें बातचीत के दौरान अरबी-फ़ारसी के शब्द सहज ही आ जाते थे। याद कीजिए इनकी जगह संस्कृत से शब्द गढ़ने में 'नागरी आंदोलन' के कर्णधारों को कितनी मशक़्क़त करनी पड़ी थी। हरदेवी जिस तरह के शिक्षित कायस्थ परिवार से आती थीं, वहाँ विचारों के आदान-प्रदान के लिए जैसी खड़ी बोली इस्तेमाल की जाती रही होगी, सीमंतनी उपदेश तथा स्त्री विलाप जैसी हरदेवी की शुरुआती रचनाएँ उसी भाषा का नमूना मालूम होती। जिसकी लिपि नागरी है और जिसमें पारिभाषिक शब्दों के लिए संस्कृत की बजाय अरबी-फ़ारसी को तरजीह दी गई है। इनके साथ ही संस्कृत से लेकर अरबी, फ़ारसी और बाद में अंग्रेज़ी भी सीखने वाली हरदेवी का अपना बहुभाषीय व्यक्तित्व जो उनके अपने बहुभाषीय समाज की देन था, वह भी उनकी हिंदी को 'नागरी आंदोलन' वाली हिंदी से अलग करता था। एक नमूना देखें :

कपड़ा

जैसा इनको ला देते हैं ये पहन लेती हैं। न इनको पूछा जाता है, न दिखाया, न पसंद कराया जाता है। जैसा जी चाहता और सस्ता देखते हैं ला देते हैं। आप हर रोज या दूसरे-तीसरे दिन कपड़ा बदलते हैं। यह साल भर में शायद बारह दफ़ा बदलती होंगी।

सौ रुपये तनख़्वाह वाले का कपड़े का ख़र्च सौ रुपये साल से कम न होगा। औरत के वास्ते दस रुपये भी बड़ी मुश्किल से खर्चते हैं। एक हफ़्ते में आठ दफ़ा कपड़ा बदलें बेशक साफ़ रहेगा, और जो आठ हफ़्ते में एक बार बदलें वह क्यों न मैला रहे? बस, औरतों को मर्द ही गंदा रखते हैं, वे ख़ुद मैली नहीं रहतीं। ऐ अपनी गंदी औरतों को देख के ख़ुश होने वालो, फिर उन पर मैली होने का इल्ज़ाम लगा, रंडी-लोंडों की तलाश करने वालो, आप यह ख़्याल न करें कि औरतें ग़लीज़ रहती हैं, हम तो सफ़ा रहते हैं। नहीं इसकी बदबू ने कुछ औरतों के ही दिमाग़ को मैला नहीं किया बल्कि आपके दिमाग़ में भी इसने बहुत कुछ असर पैदा कर लिया है। और जो बीमारियाँ इस गलीजी से औरतों को होती है उनका जुल्म भी आप ही की गर्दन पर है। औरतें जो तकलीफ़ उठाती हैं इसका जवाब भी आप ही से पूछा जाएगा। ऐ हिंदुस्तानी भाइयो, इन बेचारियों को गलीज रख जेलखाने में डाल आप सफ़ा रह बाहर की सैर करो और फिर इन दुखियों पर शक रखो, खुदा के सामने क्या मुँह दिखाओगे?"[79]

जैसा कि हम कह आए हैं, 'सीमंतनी उपदेश', 'लंदन यात्रा', 'हुक्मदेवी', 'स्त्रियों पै सामाजिक अन्याय' तथा 'भारत भगिनी' सबकी भाषा एक दूसरे से अलग और अपनी विधाओं के अनुरूप है। जहाँ किशोरावस्था में लिखी गई 'सीमंतनी उपदेश' पश्चिमोत्तर प्रांत के कायस्थ परिवारों में उस समय बोली जाने वाली उर्दूयुक्त खड़ी बोली हिंदी में है जिसमें ब्रजभाषा का लहजा और कहावतें भी हैं, तो वहीं 'लंदन यात्रा' को उन्होंने घोषित रूप से आम बोलचाल की 'सरल भाषा' में लिखा है। लंदन यात्रा में हरदेवी मानक हिंदी के व्याकरण से कुछ छूट लेती हैं और बेखटके अपनी पाठिका बहिनों से तद्भव शब्दों में अपने यात्रा के क़िस्से कहती हैं। पुस्तक की भूमिका में ही हरदेवी ने भाषा के सम्बन्ध में यह टिप्पणी की है :

"अपनी यात्रा ब्रतांत को पुस्तक और सरल भाषा में बनाय आज तुमहारी सेवा में अरपन करती हूँ।"

'हुक्मदेवी' एक शिक्षाप्रद सामाजिक उपन्यास है जिसकी कहानी पंजाब के एक धनी व्यवसायी द्वारा अपनी पुत्री का बाल विवाह करने से उपजी परेशानियों के इर्द-

गिर्द घूमती है। हरदेवी के इस उपन्यास की कथावस्तु एक बार फिर हमें प्रेमचंद का ज़िक्र करने को विवश करती है। हालाँकि हरदेवी की अपनी शैली है और उनके समय की अपनी सीमाएँ, लेकिन हुक्मदेवी की कथावस्तु जिस तरह एक सुखी-सम्पन्न खत्री परिवार से शुरू होती है और जिस तरह पिता द्वारा की गई एक ग़लती (बाल विवाह) से उनके पूरे परिवार की सुख शांति नष्ट हो जाती है, एक के बाद एक आने वाली मुश्किलों का सिलसिला थमता नहीं है और अंत में अकेली रह जाती है विधवा हो चुकी युवती हुक्मदेवी, अकेली आने वाली विपत्तियों से जूझने के लिए! वह किस्सागोई की शैली, जो प्रेमचंद की पहचान है, उसका एक पुराना रूप हरदेवी के इस उपन्यास में दिखलाई पड़ता है :

"जिस दिन से हुक्मदेवी का सर्वनाश हुआ रामसहाय की ख़ुशी और प्रसन्नता भी उसी दिन से दूर हो गई। अब वह उत्साह और वह उमंग नहीं रहा संसार के किसी काम में मन नहीं लगता, किसी मित्र आशना सम्बंधी से मिलकर ख़ुशी नहीं होती न घर ही में कहीं मन लगता, बल्कि जबतक बाहर रहते तबतक तो थोड़ा बहुत काम कर भी लेते घर में आकर जहाँ हुक्मदेवी का मलिन और उदास मुख देखा मानो हृदय पर साँप लोट गया एक गहिरी श्वास भर खड़े के खड़े ही रह जाते थे। बालिका की सरल मूर्ति और उसका अथाह दुःख विचार इनकी आँखों में अँधेरा छा जाता था, दिन पे दिन शरीर दुर्बल और जीर्ण होने लगा।"[81]

'स्त्रियों पै सामाजिक अन्याय' जिसे हरदेवी ने पुरुष समाज को स्त्री शिक्षा के लिए राज़ी करने को लिखा था, उसमें लेखिका ने अच्छी ख़ासी बहस की शैली अपनाई है। संस्कृत के उद्धरण दे-देकर अपने तर्कों को सिद्ध करने के प्रयास में यह पुस्तिका ख़ासी संस्कृतनिष्ठ बन पड़ी है :

"देखा गया है कि जिन धनवान पिताओं ने हज़ारों रुपये की सामग्री कन्या के दहेज में दी। सुंदर बहुमूल्य भूषण वस्त्रों से भूषित कर कन्या को श्वसुराल भेजा, उनके कठोर स्वभाव निर्दय श्वसुर ने सब चीज ले ली, यहाँ तक कि कन्या के शरीर के वस्त्र भूषण उतार उसे एक जीर्ण पुराना वस्त्र दे महा कंगालिनी भिखारी बनाय पिता के गृह भेज दिया। वहाँ वह अपनी क़िस्मत को रोती है और घर की टहल कर दिन काटती है फिर सिवाय इस के पुत्रों के विवाह में भी तो धन लगाया जाता है उसका हिसाब कोई नहीं करता।

सुहृदगणों! विचार का स्थान है, जिस एक ही गृह में पुत्र, कन्या पिता के धन से लाड़ प्यार से पालित हुई है और जो जन्मभूमि इसकी पृथ्वी पर आने से पहिले ईश्वर ने इसके लिए सब प्रकार के सुखों से भरपूर बना रक्खी थी। शोक ! कि माता पिता की आँखें मिचते हीं वह घर पुत्रों का हो गया। इसका वहाँ ज़रा भी किसी वस्तु पे ज़ोर नहीं रहा। अनेक जगह देखा गया है कि पिता की मृत्योपरांत पुत्र सर्वाधिकारी हो निराश्रिता भगिनी को कहते हैं यदि हमारी ख़ुशामद और घर की टहल करेगी तो तुम्हें रोटी देंगे सो भी मानो उसपे बड़ा भारी अहसान किया जाता है। इस दशा में विधवा कन्या की अवस्था तो बहुत ही शोचनीय होती है और जो कहीं दो चार संतान भी साथ हुई तब तो इस निराश्रित अनाथ परिवार की दुरदशा का हाल मत पूछो। उन्हें शिक्षा देना तो दूर रहा उनका पालन करना भ्राता को भार हो जाता है। यही कारण है कि विधवा स्त्रियों की संतान मूर्ख, कुपढ, अशिक्षित, अयोग्य दिखाई देती है।"

'भारत भगिनी' अख़बार की भाषा बोलचाल की प्रवाहमान खड़ी बोली और शैली विशुद्ध अखबारी है, जो 'हरिश्चंद्र मैगज़ीन' या 'कविवचन सुधा' की छंदबद्ध पत्रकारिता से काफ़ी अलग और बोधगम्य है। न यहाँ उर्दू को दरकिनार किया गया है, न ही बेवजह की आलंकारिकता ठूँसी गई है। हालाँकि तुकबंदी का किशोरावस्था से चला आ रहा शौक़ यहाँ भी छूटा नहीं है। कविता भले ही चार ही पंक्तियों की हो, लेकिन उसका शुरुआत में होना हरदेवी की रचना में निहायत ज़रूरी है। 'भारत-भगिनी' पत्र के अंक भी 'सीमंतनी उपदेश' या 'स्त्री विलाप' की तरह प्रार्थना के साथ ही शुरू होते थे जिनमें प्रायः स्त्री जाति को ज्ञान तथा शिक्षा देने और तत्कालीन परिस्थितियों से आज़ाद करने की गुहार लगाई जाती थी। इन अर्थों में भी हरदेवी की पत्रकारिता और उनकी शैली 'रसिक जनों के चित्त विनोदार्थ' निकाली जा रही पत्रिकाओं से अलग थी। हरदेवी का लेखन ख़ासकर उनकी पाठिकाओं के लिए है, जिससे उनकी पत्रकारिता में एक ख़ास तरह की अंतरंगता या एक भगिनी-भाव (Sisterhood) देखा जा सकता है।

फ़िलहाल श्रीमती हरदेवी की बस यंही कुछ रचनाएँ मिल सकी हैं जिनका रचनाकाल 1881 से 1902 के बीच का है जबकि हरदेवी के 1930 के सत्याग्रह आंदोलन तक सक्रिय होने का पता चलता है। बाद के दौर में उन्होंने क्या लिखा, या उनकी भाषा-शैली और विचारधारा में क्याकुछ परिवर्तन आए यह एक जिज्ञासा का विषय है। हरदेवी की यह मौजूद रचनाएँ काफ़ी छोटी-छोटी हैं, जैसे कि उन्नीसवीं सदी की हुआ करती थीं। उन्नीसवीं सदी के दूसरे हिंदी लेखकों की तरह ही हरदेवी का अधिकांश लेखन उनके अख़बार 'भारत भगिनी' से ही जाना जा सकता है जिसका अधिकांश हिस्सा और कई बार तो पूरा का पूरा अंक ख़ुद हरदेवी ही लिखती थीं। इस अख़बार के 1888 में शुरू होने और 1907-08 तक निकलते रहने का उल्लेख तो

कई जगह मिलता है, लेकिन ठीक से संरक्षित न होने के कारण, अब इसके दो-तीन वर्षों के ही अंक उपलब्ध हैं। ऐसे में हरदेवी के लेखन के कुछ पहलुओं से हम निश्चित रूप से अनजान ही बने हुए हैं और हिंदी के एक वैकल्पिक लोकवृत्त को इन सीमित रचनाओं के सहारे ही समझने को विवश हैं। लेकिन हरदेवी का लेखन यह आश्वासन तो देता ही है कि हिंदी का लोकवृत्त कभी भी केवल पितृसत्तात्मक या ब्राह्मणवादी ही नहीं रहा, हरदेवी जैसी लेखिकाओं का मिलना हिंदी के एक 'बहुल-लोकवृत्त' की ओर इशारा करता है।

'सीमंतनी उपदेश' की 'एक हिंदू औरत' तथा 'एक विधवा युवती'

1881 में Hindu Widows : By One of Them, (Written by a Young Widow, and Translated by an English Lady) शीर्षक से एक लेख The Journal of national Indian Association, London में प्रकाशित हुआ। इसे लिखने वाली पंजाब प्रांत की 'एक विधवा युवती' (A Young Widow) थी जिसे एक इंग्लिश लेडी ने अंग्रेज़ी में अनुवादित किया था। इसी के अगले वर्ष 1882 में 'सीमंतनी

सीमन्तनी उपदेश

यह किताब एक हिन्दु औरत की तसनीफ़ है

[illegible]

[illegible]

[illegible]

मूल पुस्तक के
पहले पृष्ठ की फोटोप्रति

चित्र 5 : 'सीमंतनी उपदेश' मूल पुस्तक की डॉ. धर्मवीर द्वारा उपलब्ध कराई गई छायाप्रति

उपदेश' नाम की एक पुस्तक जो 'एक हिंदू औरत की तसनीफ़' थी, पंजाब के प्रसिद्ध समाज सुधारक कन्हैयालाल अलखधारी ने छपवाई। इस पुस्तक में उपरोक्त लेख 'रांडो पर सितम' नाम से संकलित था। सूज़ी थारू एवं के. ललिता के अनुसार 1889 में यही लेख 'The Gospel in all Lands' में छपा तथा बाबा पदमन जी ने अपने मराठी उपन्यास 'यमुना पर्यटन' के परिशिष्ट में भी इस लेख को संग्रहित किया। जिसे बाद में अंग्रेज़ी में उल्था करके सूज़ी थारू एवं के. ललिता ने अपनी पुस्तक 'Women's Writing in India : 600 B.C. to present' में स्थान दिया। संपादिकाओं ने इस लेख को 'Anonymous' (अज्ञात) शीर्षक के तहत रखा, जहाँ इस लेख का अंग्रेज़ी अनुवाद 'Plight of Hindu Widows' के नाम से किया गया। पंडिता रमाबाई ने अपनी पुस्तक 'The High Caste Hindu Women' के 'वैधव्य' शीर्षक अध्याय में The Hindu Widows नाम का एक लेख उद्धृत किया है, जिसके लेखक देवेंद्र एन. दास हैं जो अपने लेख के भीतर पुन: उपरोक्त लेखिका द्वारा लिखे गए इस लेख का एक अंश उद्धृत करते हैं। देवेंद्र एन. दास का यह लेख 'युवा विधवा' का लेख छपने से पाँच वर्ष बाद 1886 में छपा था। ऐसा लगता है कि 'एक विधवा युवती' का यह लेख अपने समय में काफ़ी चर्चित हुआ था जिसे लम्बे समय तक अलग-अलग भाषाओं में अनुवाद करके छापा जा रहा था। पंडिता रमाबाई ने अपनी पुस्तक में 'सीमंतनी उपदेश' के प्रथम अध्याय 'आर्य स्त्रियों की प्रार्थना' को भी उद्धृत किया है जिससे स्पष्ट है कि रमाबाई ने मूल 'सीमंतनी उपदेश' पुस्तक देखी थी तथा वे इसकी लेखिका से परिचित थीं।

'सीमंतनी उपदेश' पुस्तक को दोबारा प्रकाश में लाने का श्रेय डा. धर्मवीर को जाता है जिन्होंने काफ़ी शोध करके इस पुस्तक को दोबारा प्रकाशित कराया। किंतु डा. धर्मवीर ने इस पुस्तक को सम्पादित करने में कुछ ऐसी ग़लतियाँ कर दीं, जिससे 'सीमंतनी उपदेश' की लेखिका की सही पहचान खोज पाना काफ़ी कठिन हो गया। प्रथम तो उन्होंने मूल पुस्तक की वर्तनी 'सुधार' दी जिससे भाषा-शैली के आधार पर लेखिका का दूसरी रचनाओं से मिलान करना कठिन हो गया। दूसरे, जब यह पुस्तक छपी थी तब इसे 'एक हिंदू औरत' की रचना बताया गया था। अंग्रेज़ी में भी इसे 'विधवा युवती' की रचना ही कहा गया। डा. धर्मवीर ने इसमें 'अज्ञात' शब्द जोड़ दिया जिससे सबका

ध्यान इस बात पर केंद्रित होकर रह गया कि यह एक ऐसी स्त्री की रचना है जो ख़ुद को 'अज्ञात' रखना चाहती है। जबकि ऐसा नहीं था। उन्नीसवीं सदी में पश्चिमोत्तर प्रांत की इतनी कम महिलाएँ पढ़ी-लिखी थीं कि ख़ुद को मूल रूप से आगरा या पश्चिमोत्तर प्रांत की बताने वाली कोई युवती, जो कह रही है कि वह रईस कायस्थ परिवार से है, विधवा है और फ़िलहाल पंजाब में रह रही है। जिसकी पुस्तक में लाहौर का ज़िक्र आता है। जो ब्रह्मसमाज के नवीन चंद्र राय, आर्यसमाज के दयानंद सरस्वती, देव समाज के शिवनारायण अग्निहोत्री और कन्हैयालाल अलखधारी को धन्यवाद ज्ञापित कर रही है। जिसकी पुस्तक कन्हैयालाल अलखधारी छपवा रहे हैं। वह भी जनाने में मुफ़्त बाँटने के लिए। जिसके बारे में पंडिता रमाबाई अच्छी तरह जानती हैं और लिख रही हैं कि उसने ब्रिटिश ज़नाना मिशन से शिक्षा पाई थी, इसके बाद छिपाने के लिए क्या रह जाता है।

अगर यह युवा लेखिका अपनी शुरुआती किताबों में ख़ुद को 'एक हिंदू औरत' या 'इनकी सतायी हुई एक महादुखित विधवा' कह रही थी तो यह अपनी पहचान छिपाने के लिए नहीं था। यह तो उस समय की एक लोकप्रिय शैली थी, जिसमें लेखिकाएँ ख़ुद को अपने समुदाय के नाम से चिन्हित किया करती थीं। संभवत: यह शैली लेखिकाएँ अपनी पाठिकाओं से अंतरंगता उपजाने और बहनापा क़ायम करने की कोशिश में अपनाती थीं। जैसे— 'एक हिंदू औरत', 'एक जैनमती स्त्री' आदि।

तीसरी, सूजी थारू एवं के. ललिता के अनुसार 'यमुना पर्यटन' उपन्यास के परिशिष्ट में बाबा पदमन जी ने विधवा जीवन पर स्त्रियों द्वारा लिखे दो लेख संकलित किए थे। यह दूसरा लेख एक भाषण है जो बम्बई के 'प्रार्थना समाज' में एक स्त्री ने दिया था। इसे भी सूजी थारू एवं ललिता ने अपनी पुस्तक में 'अज्ञात' शीर्षक के अंतर्गत ही रखा है। लेकिन इसका कोई प्रमाण नहीं कि ये दोनों लेख एक ही लेखिका के लिखे हुए हैं। इसका भी प्रमाण नहीं है कि यह दूसरा लेख, जो एक भाषण है, इसे लिखने वाली महिला विधवा थी। 'सीमंतनी उपदेश' में यह लेख शामिल नहीं है। पता नहीं किस आधार पर डॉ. धर्मवीर ने इसे एक ही लेखिका की रचना माना है। हमारी समझ से, 1881 की सुबोध पत्रिका में प्रकाशित यह भाषण किसी मराठी महिला का ही रहा होगा, जो प्रार्थना समाज से जुड़ी रही हो।

सीमंतनी उपदेश तथा श्रीमती हरदेवी

अपनी पुस्तक 'रस्साकशी' में 'सीमंतनी उपदेश' की लेखिका श्रीमती हरदेवी के होने की सम्भावना से इनकार करते हुए वीर भारत तलवार ने लिखा था, ''क्या यह मुमकिन है कि हरदेई ही वह 'अज्ञात हिंदू औरत' रही हो? वैचारिक दृष्टि से यह सबसे ज़्यादा सम्भव है, पर तथ्यों की दृष्टि से इसमें बस एक ही रुकावट लगती है—1882 में ऐसी किताब लिखने के लिहाज़ से हरदेई की उम्र बहुत कम रही होगी। सीमंतनी उपदेश की अज्ञात हिंदू औरत चाहे जो भी रही हो, इसमें संदेह नहीं कि वह पंजाब के धार्मिक-सुधारकों के कामों से अच्छी तरह वाक़िफ़ थी और वैचारिक दृष्टि से उनके काफ़ी निकट थी।''[92] ऐसी पुस्तक लिखने के लिहाज़ से हरदेवी की 'उम्र बहुत कम' समझने वाले विद्वान शायद यह जानकर अचम्भित होंगे कि यह एक 'युवा विधवा' की रचना ही थी, जिसका अब प्रमाण मौजूद है। सीमंतनी उपदेश की लेखिका हरदेवी ही थीं, ऐसा मानने की कई वजहें हैं :

1. हरदेवी मूल रूप से पश्चिमोत्तर प्रांत के आगरा ज़िले में स्थित जलेसर की रहने वाली थीं जिनके पिता पंजाब में बस गए थे। 'सीमंतनी उपदेश' की लेखिका भी पश्चिमोत्तर प्रांत के आगरा की रहने वाली है, अंग्रेज़ी में छपे लेख में वह भी आगरा में अपने परिवार के होने की सूचना देती है तथा वह भी पंजाब में बस गई है।

2. 'सीमंतनी उपदेश' की लेखिका ख़ुद को एक धनी कायस्थ परिवार का बताती है। श्रीमती हरदेवी के पिता राय बहादुर कन्हैयालाल पंजाब लोक निर्माण विभाग के सबसे ऊँचे ओहदे पर कार्यरत थे और निश्चित रूप से एक रईस कायस्थ थे।

3. 1881 में 'सीमंतनी उपदेश' की लेखिका को 'एक विधवा युवती' (A Young Widow) कहा गया है और 1863 के क़रीब पैदा हुईं श्रीमती हरदेवी, इस समय क़रीब अठारह-उन्नीस वर्ष की युवती थीं और 'युवा विधवा' थीं।

4. 1881 में 'सीमंतनी उपदेश' का 'रांडों पर सितम' लेख जिस 'The Journal of National Indian Association' में छपा था, उसी में श्रीमती हरदेवी बाद में स्त्री-अधिकारों से जुड़े मुद्दों पर लिखती रहीं। इस पत्रिका में 1888 के बाद से श्रीमती हरदेवी के बारे में लगातार ख़बरें भी छपा करती थीं। पश्चिमोत्तर प्रांत के आगरा से पंजाब में आकर बसने वाली ऐसी कितनी कायस्थ युवतियाँ

होंगी, जो विधवा हों और जिनके विधवा जीवन तथा स्त्री-सम्बंधी मुद्दों पर लेख उसी एक पत्रिका में छपते रहे हों? यह भी संयोग नहीं, जब लंदन से लौटकर हरदेवी अपने नाम से लेख तथा किताबें लिखने लगीं, उसके बाद इस 'युवा विधवा' के लेख नहीं मिलते।

5. जिस 'National Indian Association' की पत्रिका में उक्त विधवा युवती का यह लेख छपा था उस संस्था के सम्पर्क में श्रीमती हरदेवी बाद में भी बनी रहती हैं जिसे उनकी 'लंदन यात्रा' के दौरान देखा जा सकता है। 'सीमंतनी उपदेश' पुस्तक के छपने से एक वर्ष पहले इसका एक लेख 'नेशनल इंडियन एसोसिएशन' की पत्रिका में छपा था, जिसका ज़िक्र हम कर चुके हैं। 'नेशनल इंडियन एसोसिएशन' के लंदन ब्रांच की 1871में स्थापना करने वाली ई.ए. मैनिंग इसके सदस्य दादा भाई नौरोज़ी तथा बी.एम. मालाबारी आदि से हरदेवी के घनिष्ठ सम्बंध थे। 'लंदन यात्रा' की तैयारी के लिए एक माह पूर्व ही हरदेवी के भाई सेवाराम बम्बई पहुँच चुके थे और दादा भाई नौरोज़ी के घर पर ठहरे हुए थे। हरदेवी भी दादा भाई नौरोज़ी के घर ही ठहरीं थीं, जिन्हें 'लंदन यात्रा' में वे 'पारसी मित्र' कह कर सम्बोधित करती हैं। नेशनल इंडियन एसोसिएशन की लंदन शाखा की संस्थापक ई.ए. मैनिंग की हरदेवी से मित्रता का उल्लेख इसी पत्रिका में मिलता है। ई.ए. मैनिंग लाहौर जाने पर हरदेवी और उनके भाई सेवाराम के घर जाया करती थीं तथा हरदेवी के भाई भाभी के साथ मिस मैनिंग के लंदन जाने की ख़बर भी 'टाइम्स आफ इंडिया' में छपी थी। नेशनल इंडियन एसोसिएशन का प्राथमिक उद्देश्य भारत में स्त्री शिक्षा का प्रसार करना था। ऐसे में कोई संदेह नहीं रह जाता कि हरदेवी के लंदन जाने तथा पढ़ने की व्यवस्था 'नेशनल इंडियन एसोसिएशन' की मदद से हुई थी। लंदन में भी हरदेवी ई.ए. मैनिंग के सम्पर्क में बनी हुई थीं तथा वहाँ से लौटकर इस संस्था की पत्रिका में अपने लेख छपने के लिए दिया करती थीं। हरदेवी से जुड़ी ख़बरें 'नेशनल इंडियन एसोसिएशन' की पत्रिका में प्राय: 'इंडियन इंटैलिजेंस' शीर्षक के तहत छापी जाती थीं। लंदन जाते वक़्त हरदेवी अंग्रेज़ी नहीं जानती थीं, 'सीमंतनी उपदेश' की लेखिका भी नही जानती थी। ई.ए. मैनिंग से उनके घनिष्ठ सम्बंध इस ओर इशारा करते हैं कि 1881 में अपनी पत्रिका के लिए ख़ुद मिस मैनिंग ने उनके लेख का अनुवाद किया होगा क्योंकि उस लेख की अनुवादिका एक 'इंग्लिश लेडी' हैं। लंदन से लौटने के बाद हरदेवी को अनुवादक की ज़रूरत नहीं थी। इस संस्था की पत्रिका तथा 'पंजाब पैट्रियट' जैसी दूसरी अंग्रेज़ी पत्रिकाओं में वे ख़ुद ही लिखने लगी थीं।

6. नेशनल इंडियन एसोसिएशन की स्थापना मैरी कारपेंटर ने केशव चंद्र सेन की मदद से की थी, जिसकी पत्रिका में 'सीमंतनी उपदेश' के अंश छपे थे। ऐसे में इस युवा विधवा के ब्रह्मसमाज से जुड़े होने में संदेह नहीं है। नवीनचंद्र राय आदि का किताब की शुरुआत में अत्यधिक आदर के साथ उल्लेख तथा हिंदू स्त्रियों द्वारा साँप, बिच्छू, चील, कौवा की पूजा करने के रिवाज पर अफ़सोस ज़ाहिर करते हुए लिखना, "क्या ये वही हैं जो एक ही ब्रह्म की उपासना करती थीं?" 'सीमंतनी उपदेश' में आए इस तरह के विवरणों से भी इसकी लेखिका के ब्रह्मसमाजी होने में संदेह नहीं रह जाता। श्रीमती हरदेवी ब्रह्मसमाजी थीं। इस तरह भी वे ही 'सीमंतनी उपदेश' की लेखिका मालूम होती हैं।

7. 'तारीख़-ए-लाहौर' की शुरुआत में राय बहादुर कन्हैयालाल 'खुदा' का शुक्र अदा करते है। सीमंतनी उपदेश की लेखिका भी ईश्वर के लिए 'खुदा' का सम्बोधन करती हैं। *स्त्री विलाप* की विधवा लेखिका अपने भजन में खुदा को सम्बोधित करती है। क्या उन्नीसवीं सदी में बहुत सी ऐसी हिंदू लेखिकाएँ रही होंगी जो अपने ईश्वर को खुदा कहकर पुकारें? हरदेवी के पिता राय बहादुर कन्हैयालाल जो 'हिंदी' तख़ल्लुस से हिंदोस्तानी और फ़ारसी में शायरी किया करते थे तथा जिन्होंने कई इतिहास की किताबें हिंदोस्तानी भाषा में लिखी थीं बहुत सम्भव है इसका असर उनकी बेटी पर भी पड़ा होगा। 'सीमंतनी उपदेश' मूल रूप से नागरी भाषा में लिखी गई किताब है, जिसमें संस्कृतनिष्ठ हिंदी की जगह उर्दू शब्दों का इस्तेमाल किया गया है। कुछ विद्वान इसे मूल रूप से उर्दू में लिखा हुआ समझते हैं लेकिन ऐसा नहीं है। असल में लिपिकार 'ऋषिराज' का नाम देखकर ऐसा भ्रम होता है। लेकिन लिपिकार, उस दौर में सुलेखक हुआ करते थे जिनका काम लिप्यांतरण करना नहीं बल्कि किताबों को हाथ से तैयार करना होता था। यह शैली फ़ारसी किताबों के ज़माने से चली आ रही थी, जिसमें एक फ्रेम के भीतर हाथ से लिखकर किताबें तैयार की जाती थीं तथा उसी की प्रतियाँ बनायी जाती थीं। सीमंतनी उपदेश के दो पृष्ठों के जो नमूने डा. धर्मवीर ने उपलब्ध कराए हैं, वे हाथ से लिखे हुए हैं।

8. पाठिकाओं के प्रति आत्मीय सम्बोधन और 'स्त्री जाति' के बहनापे का बोध, ऐसी विशिष्टता है जो हरदेवी की सभी रचनाओं को एक-दूसरे से जोड़ती है। 'स्त्री विलाप' तथा 'सीमंतनी उपदेश' की 'हिंदनी बहनें', 'भारतखण्डी स्त्रियाँ' या 'आर्य्या स्त्रियाँ' 'प्यारी पाठिकाएँ' भी हैं और 'भारत भगिनी' भी। हरदेवी अपने लेखन में सचेत रूप से जिस 'स्त्री जाति' का उल्लेख करती हैं, स्त्रियों के एक वर्ग या जाति होने की यह चेतना उस समय के स्त्री लेखन में दुर्लभ है। यह हरदेवी ही थीं, जो 'स्त्री विलाप' या 'सीमंतनी उपदेश' जैसी पुस्तकें अपनी 'पराधीन' 'हिंदनी बहनों' के लिए लिख रही थीं।

9. 'सीमंतनी उपदेश' किसी ब्रह्मसमाजी महिला की ही रचना हो सकती है। इसमें ब्रह्मसमाज के विचारों तथा सुधारकों के प्रति विशेष आग्रह है। 'सीमंतनी उपदेश' की भूमिका में अपने समय के चार सुधारकों का महिलाओं की ओर से शुक्र अदा किया गया है। इनमें से एक ब्रह्मसमाजी—नवीन चंद्र राय, एक ब्रह्मसमाज से जुड़े हुए 'देव समाज' के संस्थापक—शिवनारायण अग्निहोत्री तथा तीसरे ब्रह्मसमाज के क़रीबी रहे कन्हैयालाल अलखधारी हैं। इन तीनों के प्रति लेखिका कृतज्ञता ज्ञापित करती है। जबकि वह आर्यसमाज के संस्थापक दयानंद सरस्वती के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते समय कुछ शंकालु है। उसे नहीं लगता कि उन्होंने स्त्रियों के लिए अब तक पर्याप्त कार्य किया है, हालाँकि उसे उम्मीद है कि, ''हमारे मुक़दमें में भी वे एक दिन ज़रूर इंसाफ़ करेंगे''। हरदेवी का भी यही रवैया था। वे आर्यसमाज का आदर करती थीं लेकिन थीं ब्रह्मसमाजी। 'सीमंतनी उपदेश' की लेखिका के द्वारा धार्मिक पंथों का जो क्रम निर्धारित किया गया है, उससे भी उसके ब्रह्मसमाजी होने की पुष्टि होती है। ''जैसे ब्रह्मसमाज में राजा राममोहन राय को माना—परशुराम को ब्राह्मणों ने—ब्राह्मणों को हिंदुस्तानियों ने—ईसा को अंगरेजों ने—मोहम्मद को मुसलमानों ने। जैसे इन्होंने अपने फ़रीक की निजात की कोशिश की थी वैसे ही आजकल बहुत दानिशमंद तरदुद्द करते हैं कि जो मस्तूरात नाकरदा गुनाह काले पानी की सज़ा के बराबर हुई है उनकी रिहाई करें।''

10. 'सीमंतनी उपदेश' तथा श्रीमती हरदेवी के शेष लेखन में कुछ विषयगत और कुछ शैलीगत समानताओं से भी उनके एक ही होने का आभास मिलता है। इन प्रसंगों में से कुछ को उदाहरण के बतौर प्रस्तुत किया जा रहा है -

प्रसंग-1

सीमंतनी उपदेश—''मालूम होता है कि यह श्लोक मनु जी का नहीं, किसी पंडित का बनाया है।''

''मालूम होता है यह धर्मशास्त्र पीछे बना है पुराना नही है।''

स्त्रियों पै सामाजिक अन्याय—''हमें उन मनु आदिक महात्माओं से कभी ऐसे निर्दय शास्त्र की आशा नहीं है। यह किसी स्वार्थप्रिय स्त्री कुल के शत्रु का रचा हुआ धर्मशास्त्र जिसे अधर्मशास्त्र कहना चाहिए मालूम होता है।''

प्रसंग-2

सीमंतनी उपदेश—''पहले हिंदुस्तान में रिवाज था, जब कोई मरता उसकी औरत को उसके साथ ज़िंदा जला देते थे। अब अँग्रेजों के राज में यह रिवाज जाता रहा है। मगर विधवाओं के वास्ते कुछ बसर नहीं हुआ। फिर बताओ, वह लोग क्या करें?''

''इस तकलीफ़ से सती होने का रिवाज अच्छा था।''

स्त्रियों पै सामाजिक अन्याय—''एक क्षण भर के दु:ख से आयु भर की घोर चिंता और अनेक प्रकार की विपत्तियों से छुट जाती थीं।''

प्रसंग-3

सीमंतनी उपदेश—''क्या ये वही हिंदुस्तान की औरते हैं जिनको ब्रह्मा ने अपने आधे अंग से पैदा किया था? अफ़सोस है कि आधा अंग मज़े उड़ाए, आधा दु:ख सहे !''

स्त्रियों पै सामाजिक अत्याचार—''मनु भगवान ने सृष्टि की उत्पत्ति विषय में लिखा है कि जब उस जगत कर्ता विधाता को सृष्टि रचने की इच्छा पैदा हुई तो उसने अपने शरीर के दो भाग कर डाले। एक से स्त्री दूसरे से पुरुष बनाया...कोई मनुष्य अपने शरीर के दो भागों में कोई भेद नहीं रखता कि एक को अच्छा समझे दूसरे को बुरा या एक का आदर करे दूसरे से घृणा व आधे अंग पै सुंदर वस्त्र भूषण धारण करे और आधे को नग्न रखे या आधे को शुद्ध कर आधे को मलीन पड़ा रहने दे।''

प्रसंग-4

सीमंतनी उपदेश—''अशराफ़ों बहू बेटियों को बहका निकालना, उन्हें बेच देना, जहाँ हवा का गुज़र न हो वहाँ बदमाशों का पहुँचना...लाहौर और अमृतसर में कोठियाँ मशहूर है।'' ... ''अगर कहो, सरकार में इत्तिला करने को कैसे जावें? जवाब—जब आप खानग़ी बन अमृतसर के चकले में जाती हो तब कौन रास्ता बताता है।''

हुक्मदेवी—इस उपन्यास का छठा भाग, अमृतसर के इन्हीं वेश्यालयों पर केंद्रित है। लाहौर निवासी हरदेवी यहाँ भी अमृतसर के वेश्यालयों तथा 'दरबार साहिब' के आस-पास रात को होने वाली वेश्यावृत्ति का विस्तृत चित्र खींचती हैं। 'सीमंतनी उपदेश' का 'बदमाशों का हाल' नामक अध्याय और 'हुक्मदेवी' के छठे भाग की विषयवस्तु लगभग एक है।

ऐसे अनेको प्रसंग हैं, जिनकी तुलना यहाँ नहीं की गई है। जो लेखिका युवावस्था से ही स्त्री-शोषण को लेकर इतनी सचेत थी, जिन ब्राह्मणवादी रीति-रिवाजों और परदे का वह इस तीख़ेपन के साथ विरोध कर रही थी, उन्हीं को वह चुपचाप ढोती रहे, इसे मानने की कोई वजह दिखाई नहीं देती। इस पुस्तक का कोई भी पाठक इस युवा लेखिका में चारदीवारी से बाहर निकलने की, औरतों के लिए, अपने लिए; कुछ बेहतर करने की बेचैनी को अनदेखा नहीं कर सकता। उसका कहना, "आज भी बहुत अंग्रेज़ी लेडिएँ हैं, जो अपना वक़्त ही दुनिया के फ़ायदे में ख़र्च करती हैं। उम्दा से उम्दा किताबें, रिसाले, अख़बार लिखती हैं। दूर का सफ़र अपने ऊपर अखत्यार कर हिंदुस्तान में सिर्फ़ पर-उपकार ही के लिए आती है।" हमारा ख़याल है कि इस युवा लेखिका ने "दूर का सफ़र" भी किया और "उम्दा से उम्दा किताबें, रिसाले, अख़बार" भी लिखे। 'सीमंतनी उपदेश' की युवा लेखिका और लंदन यात्रा करने वाली हरदेवी कोई दो नहीं एक ही हैं। यह सम्भव नहीं लगता कि अगर कोई युवा लड़की अपना नाम दिए बग़ैर किसी किताब को छपवा रही है, तो कोई भी दूसरा तरीक़ा है, उसका नाम जानने का। वह किताब तो बिना किसी लेखिका के ही रहेगी। भले ही उसकी लेखिका बाद में कितनी भी किताबें अपने नाम से प्रकाशित कराए। श्रीमती हरदेवी के बाद के सार्वजनिक जीवन को देखते हुए यह समझ में आता है कि क्यों उन्होंने इन किताबों को दोबारा अपने नाम से नहीं छपवाया। लंदन से लौटने के बाद हरदेवी ने स्त्री शिक्षा के प्रचार को अपना लक्ष्य बना लिया था और पति-पत्नी दोनों ही इस काम में जुटे हुए थे। ऐसे में स्त्री शिक्षा के लिए पुरुष पाठकों को सहमत करना भी बहुत ज़रूरी था। अब वे अठारह वर्ष की युवती नही थीं, जो जिसे चाहे खरी-खरी सुना दे। सो उन्होंने दो-दो हाथ कर लेने की बजाय, पुरुषों को सहमत करना अधिक ज़रूरी समझा। इसे स्त्री-अधिकारों के प्रति उनकी उदासीनता नहीं समझ लेना चाहिए, इसी लक्ष्य के लिए तो वे बदली रणनीति के साथ मैदान में उतरी थीं। प्रेमचंद की स्वराज्य के प्रति प्रतिबद्धता उनके बाद के लेखन में कुछ कम नहीं हो गई थी, लेकिन अब वे 'सोज़े-वतन' जैसी कहानियाँ नहीं लिख रहे थे। वजह, वे अपना साहित्य ज़ब्त कराना नहीं, पाठकों तक पहुँचना सीख चुके थे। जो ज़्यादा ज़रूरी था।

"स्त्री विलाप अर्थात गड़बड़ स्मृति, बुढ़िया पुराण से बग़ैर मरजी ज़बरदस्ती का विवाह।"

'युवा हिंदू विधवा' के नाम से 1881 में लेख लिखने वाली इस लेखिका की एक अन्य पुस्तक मिलती है। 1881 में शाहजहाँपुर के 'आर्यदर्पण प्रेस' से छपी यह पुस्तक 'स्त्री विलाप अर्थात गड़बड़ स्मृति, बुढ़िया पुराण से बग़ैर मरजी ज़बरदस्ती का विवाह' है जिसे 'इनकी सताई हुई एक महादुखित विधवा ने रचा है'। लेखिका का नाम इस पुस्तक में भी नहीं है किंतु निश्चित रूप से यह लेखिका कोई दूसरी नहीं हैं। यह लेखिका विधवा है। आवरण पृष्ठ पर लिखा है, "इन की सताई हुई एक महा दुखित विधवा ने रचा है।" प्रकाशन वर्ष सन 1881 है। इसी वर्ष 'हिंदू विडो'

स्त्री विलाप

अर्थात्

गड़बड़ स्मृति बुढ़िया पुराण

से

बग़ैर मरजी ज़बरदस्ती का

विवाह ।

जिस को

इन की सताई हुई एक महा दुःखित विधवाने

रचा है ।

आर्यदर्पण प्रेस शाहजहांपुर में छपा ।

सम्वत् १९३८ ।
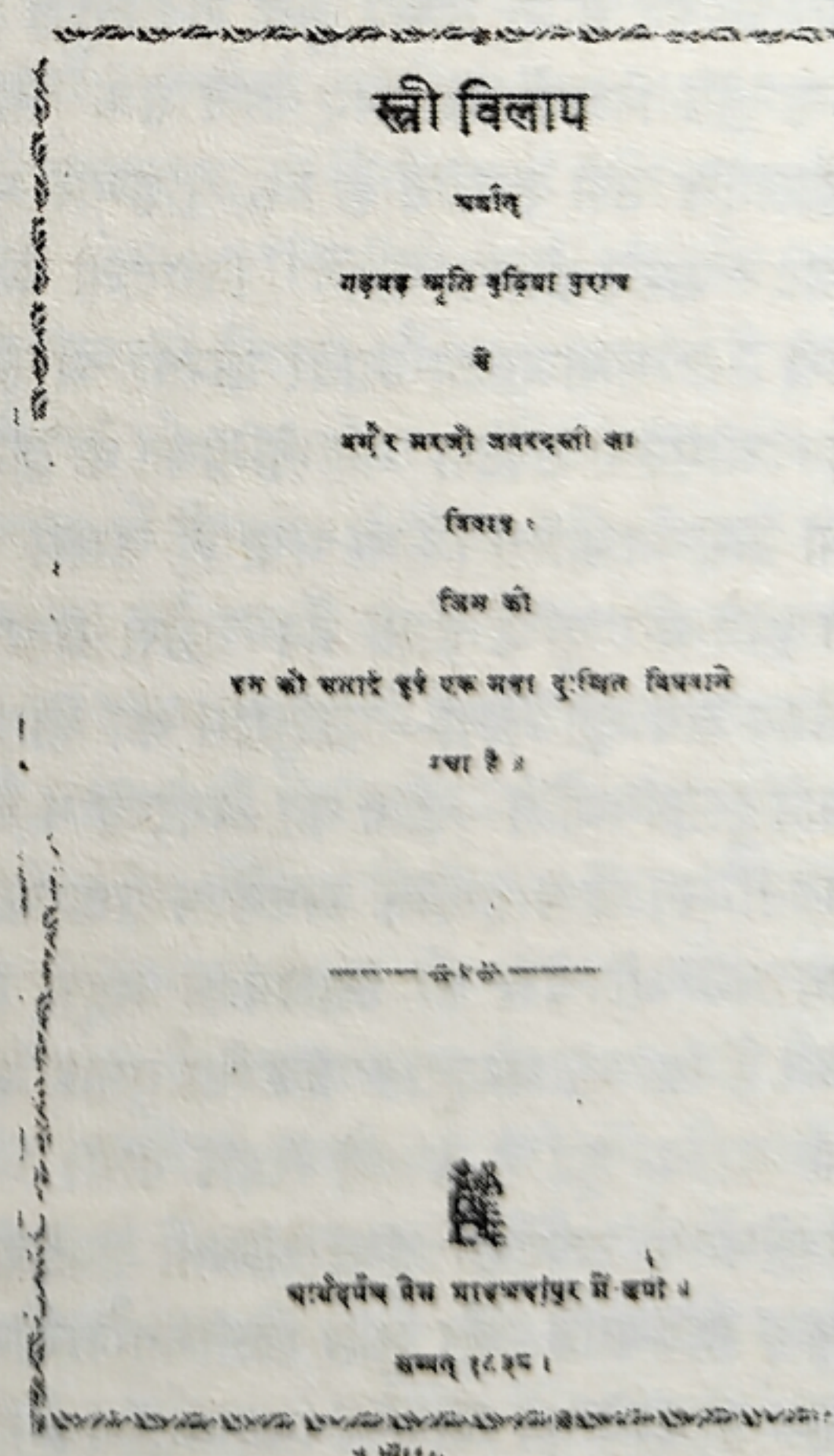
चित्र 6 : स्त्री विलाप का आवरण पृष्ठ

लेख भी प्रकाशित हुआ था। इन विवरणों से अधिक महत्वपूर्ण है, अगले ही वर्ष प्रकाशित 'सीमंतनी उपदेश' से इसकी आश्चर्यजनक समानताएँ। 'सीमंतनी उपदेश' और स्त्री विलाप की समानताएँ अलग से एक आलेख का विषय हैं, जिन्हें इस लेख की परिधि में समेटा नहीं जा सकता अत: इस पुस्तक के संक्षिप्त ब्योरे के साथ हम अपनी बात समाप्त करेंगे।

'स्त्री विलाप' वस्तुत: हिंदुओं में विवाह से जुड़े कर्मकांडों पर लिखी गई एक पुस्तक है। एक विधवा द्वारा ब्राह्मणवादी रीति रिवाजों का माखौल उड़ाते हुए लिखी गई यह पुस्तक, उन्नीसवीं सदी की एक अद्वितीय साहित्यिक रचना भी है, जिस पर अब तक ध्यान नहीं दिया गया। इस पुस्तक में लेखिका ने अनेक कूट शब्द रचे हैं और इनमें से एक आध का प्रयोग 'सीमंतनी उपदेश' में भी हुआ है। यथा—पुरोहित के लिए—'प्रेत', स्मृति के लिए—'गड़बड़ स्मृति', रीति रिवाजों के लिए—'बुढ़िया पुराण' आदि। शास्त्रों का हवाला देकर औरतों पर जुल्म ढाने वालों से निबटने के लिए लेखिका ने यह अनूठा उपाय खोजा है। स्त्रियों के साथ होने वाले हर तरह के अन्याय को शास्त्र विरुद्ध सिद्ध करने की उसकी शैली का एक नमूना देखें, "सोचने से मालूम हुआ कि इस ख़राबी की जड़ मूर्ख स्त्रियाँ ही हैं, घर का बंदोबस्त सब इनके अखत्यार में है जो जो इन्हें महारानी अविद्या कराती है ये गुड़ियों के मानिंद नाचती हैं, पंडित जी ने तो गड़बड़ स्मृति बनाई है इन्होंने एक बुढ़िया पुराण रचा है जो इस पुराण के दस्तूरों को नही मानता उसे फ़ौरन किरयन होने का इल्ज़ाम लगाती हैं।... हमें तो इनके स्वामियों पर बड़ा शोक आता है कि जिन्होंने समस्त भारत खंड में विद्या में अपना नाम प्रसिद्ध किया है, अपना नाम विद्यासागर रखा है, शास्त्र परीक्षा में उत्तम पदवी पाई है...जो मूर्ख स्त्रियाँ कहती हैं उसे पत्थर की लकीर के समान मानते हैं।" यही शैली, यही तर्क दस वर्ष बाद प्रकाशित 'स्त्रियों पै सामाजिक अन्याय' में मौजूद है, जहाँ बाहर जाकर 'ऊँची घोसने' और 'लेक्चर' झाड़ने वालों से पहले 'अपने घर का कूड़ा-कर्कट' साफ़ करने के लिए कहा गया है।

'सीमंतनी उपदेश' और 'स्त्री विलाप' दोनों में हिंदुओं में प्रचलित तरह-तरह की उपासना पद्धतियों का मज़ाक़ उड़ाया गया है। हम शुरू में ही ज़िक्र कर चुके हैं 'सीमंतनी उपदेश' की लेखिका ब्रह्मसमाजी हरदेवी ही थीं। 'स्त्री विलाप' की लेखिका के भी ब्रह्मसमाजी होने में संदेह नहीं है। पुस्तक के आवरण पृष्ठ पर 'ऊँस्वंब्रह्म' लिखा होना या "निराकार निरलेप निरलेख स्वामी" की प्रार्थना करना या भागवत, वेद, दर्शन, पुराणों का मज़ाक़ उड़ाना, लेखिका के ब्रह्मसमाजी होने और 'सीमंतनी उपदेश' की लेखिका होने में संदेह नही छोड़ता। "क्या ये वही है जो एक ब्रह्म की ही उपासना करती थीं? अफ़सोस, अब पत्त्थर, पीतल, धातु, बूढ़ा बाबू, ऊपर वाली, सेख सदी, निगाहे वाला, साँप, बिच्छू, उल्लू, चील, कौवा को पूजती हैं !"[113]

सबसे दिलचस्प है, इस लेखिका द्वारा कन्हैयालाल अलखधारी के प्रति श्रद्धा प्रदर्शन। यह 'स्त्री विलाप' में भी है और 'सीमंतनी उपदेश' में भी। 'सीमंतनी उपदेश' तो छपवाई ही थी कन्हैयालाल अलखधारी ने, 'स्त्री विलाप' जो शाहजहाँपुर से छपी थी उसकी लेखिका भी अपने पहले ही भजन में बड़ी श्रद्धा भाव के साथ कन्हैयालाल अलखधारी का नाम लेती है। वह बताती है कि किस तरह अलखधारी ने उसके भीतर 'अलख' जगायी और वह महाभ्रम से युक्त धर्म (ब्रह्मणवादी हिंदू धर्म) से मुक्त हो सकी। जिसके लिए 'प्रेत जी' (पुरोहित जी) ने उस पर 'नास्तिक' होने का आरोप भी लगाया। लेकिन यह 'अलखधारी' का ही असर था, जो लेखिका के सिर से 'प्रेत छाया' (पुरोहितों के ब्राह्मणवादी कर्मकांडों में आस्था) उतर गई। भजन के कुछ टुकड़े द्रष्टव्य हैं, "कोई गाय विष्ठा को निज इष्ट जाने, करे बहुत पूजा गोबरधन बखाने। कोई चित्त देकर करे सरप पूजा, कहै सर्प बिन जगत में कौन दूजा।...लिखै चित्र कह देव अक्षत चढ़ावे, महा भ्रम के करम को धर्म्म गावै।...करी अलख की धारना अलखधारी, कहा प्रेत जी ने यह नास्तिक है भारी। मेरे मन में जब अलखधारी समाया, गई सिर से मेरे उतर प्रेत छाया॥"[114]

सीमंतनी उपदेश की शुरुआत में भी इसी श्रद्धा के साथ कन्हैयालाल अलखधारी का उल्लेख हुआ है :

> "...तमाम हिंदुस्तान की औरतों को चाहिए कि उनका शुक्र अदा किया करें बल्कि उनको बराए ख़ुद औतार मानें जिनका मैं नाम लिखती हूँ। इनको परमेश्वर ने हमारे उद्धार को औतार तुल्य बनाया है;...मुंशी कन्हैयालाल अलखधारी जिसका एक लफ़्ज़ भी इंसाफ़ से खाली नहीं। बहुत किताबें और रिसाले लिखे। कोई किताब ऐसी नहीं जिसमें इन कैदनों की रिहाई की दलील नहीं।"[115]

आख़िर क्या वजह रही होगी जो यह विधवा लेखिका कन्हैयालाल अलखधारी से इतना प्रभावित थी? इसका उत्तर

पंजाब तथा पश्चिमोत्तर प्रांत के तत्कालीन परिवेश में चल रही, वैचारिक उथल-पुथल के इतिहास में निहित है। केनेथ जोंस लिखते हैं,

"यूरोपीय संस्कृति तथा पंजाबी समाज के रूप में ब्रिटिश औपनिवेशिक संस्कृति की पारस्परिक अंत:क्रिया ने परिधि पर खड़े पुरुषों की एक तीसरी दुनिया रच डाली। ये दोनों संसार अपनी ख़ुद की आंतरिक प्रेरणाओं, मूल्यों तथा मान्यताओं के साथ, ख़ुद में सक्रिय परिवर्तनशील तथा अस्थायी संसार थे। उत्तर पश्चिम भारत में इस तीसरी संस्कृति का निर्माण पहली बार 1830 तथा 1840 के दशक में दिल्ली में शुरू हुआ, किंतु विद्रोह के कारण एकाएक समाप्त हो गया। वास्तव में यह प्रक्रिया नए सिरे से 1860 और 1870 के दशक में पंजाब में शुरू हुईं यह उस तरह से सामूहिक न होकर, एक व्यक्ति के रूप में थी। कन्हैयालाल अलखधारी जैसे व्यक्ति उस भविष्य के एकाकी पैग़म्बर थे, जो अभी आया नहीं था। उन्होंने दूसरे व्यक्तियों को आंदोलित तो किया लेकिन एक बेहतर संसार के निर्माण की अपनी प्रेरणा को सहयोग दे सकने वाले किसी समूह का निर्माण न कर सके। 1880 तक तो नहीं, जब पंजाब ने अपने प्रथम परिधि पर खड़े (हाशिया पर खड़े) पुरुषों को जन्म दिया। अंग्रेज़ी भाषा में शिक्षित ये युवा एक परिवर्तनकामी आंदोलन खड़ा करने हेतु पर्याप्त मानव संसाधन मुहैया करा रहे थे। कालेज़ के यह युवा विद्यार्थी अपने सांस्कृतिक हाशियापन तथा शिक्षा प्रेरित अलगाव के दोहरे दबाव को अच्छे से महसूस कर रहे थे। उन्होंने नए विचारों को ढूँढ़ा और उन्हें ब्रह्मसमाज, देव धर्म तथा आर्य समाज में पाया।"[116]

केनेथ जोंस का यह उद्धरण काफ़ी कुछ कहता है। यह स्पष्ट करता है कि क्यों ज़नाना मिशनरी में शिक्षित 'सीमंतनी उपदेश' की लेखिका या 'स्त्री विलाप' की लेखिका कन्हैयालाल अलखधारी से प्रेरित थीं। आधुनिक शिक्षा प्राप्त हरदेवी की पुस्तकों में बड़ी-बूढ़ियों द्वारा 'किरयन' (क्रिश्च्यन) ठहरा देने का ज़िक्र भी इसी ओर इशारा करता है। पंडित जी द्वारा नास्तिक ठहरा दी गई यह विधवा युवती ब्रह्मसमाज की ओर मुड़ी तो इसमें आश्चर्य क्या है।

निष्कर्ष

हरदेवी एक प्रभावशाली लेखिका थीं। लाहौर से लेकर बंगाल, महाराष्ट्र या गुजरात के शिष्ट समाज में उनकी उपस्थिति थी। उनके जीवन की सामान्य घटनाएँ देश विदेश के अख़बारों में ख़बर बनती थी। क्रांतिकारी आंदोलनकारियों की वे सहयोगी हुआ करती थीं और नेशनल सोशल कॉन्फ्रेंस या कांग्रेस के सालाना अधिवेशनों से लेकर सविनय अवज्ञा आंदोलन तक वे उपस्थित थीं। इस हद तक सक्रिय होकर भी एक महिला किस तरह इतिहास में 'अज्ञात' बन गई, यह प्रश्न निश्चित तौर पर बेचैन करता है। श्रीमती हरदेवी की कहानी दरअसल पितृसत्ता के महाख्यान का एक बहुत छोटा सा अंश है। छूटते ही 'जेंडर' की पहचान से बड़ी दूसरी पहचानों को बताने वाले लोग इस पर क्या कहेंगे? यहाँ न जाति काम आयी न वर्ग और न ही लंदन की शिक्षा। अपने उच्च जातीय और सम्भ्रांत परिवेश के बावजूद हरदेवी जिस तरह इतिहास से ग़ायब कर दी गईं, वह ध्यान देने योग्य है। निश्चित तौर पर उन्नीसवीं सदी के हिंदी-लोकवृत्त की कोई भी तस्वीर हरदेवी जैसी लेखिकाओं को उपेक्षित करके अधूरी ही बनी रहेगी और इतिहास 'भारतेंदु मंडल' के इर्द-गिर्द चक्कर काटता रहेगा। लेकिन इसी के साथ इतिहास लेखन का एक दूसरा प्रश्न हमारे सामने खड़ा हो जाता है। अमेरिकी इतिहास में जब पहले-पहल महिलाओं को शामिल किया जाने लगा, उस वक़्त पारम्परिक इतिहास लेखन में प्रशिक्षित इतिहासकारों ने कुछ 'विशिष्ट औरतों' को ढूँढ़ना शुरू किया था। ये आम स्त्रियों से अलग 'प्रसिद्ध महिलाएँ' (Notable Women) या 'योग्य महिलाएँ' (Women Worthies) थीं, या कम से कम पितृसत्तात्मक प्रतिमानों के आधार पर 'योग्य महिलायें'। इसे "क्षतिपूर्ति का इतिहास" (compensatory history) कहते हुए जर्डा लर्नर ने पितृसत्तात्मक इतिहासलेखन का ही विस्तार माना है। उनके अनुसार, इस तरह स्त्रियों का आम जीवन कभी भी इतिहास का विषय नहीं बन पाता और इतिहासलेखन पर पितृसत्ता का क़ब्ज़ा बना रहता है। ऐसे में इतिहासलेखन के लिए उच्चजातीय सुशिक्षित हरदेवी का महत्व तो है ही, लेकिन अशिक्षित या निम्नवर्गीय महिलाओं की उपस्थिति भी उतनी ही आवश्यक है। इसके बिना सार्वजनिक क्षेत्र की कोई भी तस्वीर पूरी नहीं होती। हमारा आग्रह है कि लोकवृत्त को प्रिंट जगत के दायरे तक सीमित न मानकर, लोक कथाओं, नाटक-नौटंकियों, लोकगीतों तथा स्त्रियों के अंतरंग क्षेत्रों में प्रचलित उनकी अपनी नाट्य-शैलियों, रीति-रिवाजों को इसमें शामिल किए बिना बात पूरी नहीं होती। यह तय है कि, स्त्रियों की ये अंतरंग गतिविधियाँ, 'सार्वजनिक क्षेत्र' में उस तरह नहीं थीं, लेकिन सार्वजनिक क्षेत्र को इस हद तक इकहरा मान लेना भी सम्भव नहीं है जैसाकि अब तक माना जाता रहा है। श्रीमती हरदेवी को सार्वजनिक क्षेत्र का अभिकर्ता बनने के लिए पुरुषों की

तरह 'समाज' तथा 'सोसाइटी' की ज़रूरत थी लेकिन उन्हीं की 'बुढ़िया पुराण' की अवधारणा बताती है कि पुरुषों के सार्वजनिक क्षेत्र के समानांतर ही औरतों का अपना लोकवृत्त था—जहाँ उनकी अपनी पूजा-पद्धति, अपने नियम-क़ायदे चलते थे। पितृसत्तात्मक शिक्षा व्यवस्था से गुज़र कर श्रीमती हरदेवी भी अपने दौर के लेखकों की तरह ''चील, उल्लू, कौवा'' की पूजा को हिक़ारत की दृष्टि से देख रही थीं। लेकिन स्त्रियों के अंतरंग क्षेत्र में शामिल इन रस्मों-रिवाजों की व्याख्या के बिना उनका इतिहास नहीं लिखा जा सकता। इससे हरदेवी के लेखन का महत्व कम नहीं हो जाता। हिंदी साहित्येतिहास के विद्यार्थी के लिए; हिंदी के परम्परागत इतिहास लेखन को देखते हुए, यह और भी महत्वपूर्ण हो जाता है।

भारतेंदु मण्डल की नज़र से उन्नीसवीं सदी के हिंदी-समाज को देखने के अभ्यस्त रहे हिंदी के पाठक ने उस युग की स्त्रियाँ कैसे सोचती थीं; शायद ही इस पर ग़ौर किया हो। 'सीमंतनी उपदेश', 'स्त्री विलाप' तथा श्रीमती हरदेवी की अन्य रचनाएँ, आधुनिक पाठक को उस सातवीं कोठरी के भीतर ले जाती हैं, जिसके बाहर बड़े-बड़े पहरेदार बैठे हुए हैं। वे शब्दों से खेलते हैं, शास्त्रार्थ करते हैं, पितृसत्तात्मक आदर्शों का ऐसा मायाजाल रचते हैं, कि मालूम होता है; उन्नीसवीं सदी से पहले हर स्त्री-पुरुष मनुस्मृति को सिरहाने रखकर ही सोता रहा हो। जिसे 'हिंदी नवजागरण' कहा जाता रहा है, वह समस्त लेखन स्त्री प्रश्नों पर कुछ ऐसे विचार करता है, मानो उस दौर की स्त्रियाँ गूँगी गुड़िया थीं और उनके बारे में जो भी तय करना था, वह पुरुषों को ही करना था। लेकिन हरदेवी की रचनाएँ इस वहम को तोड़ने के लिए काफ़ी हैं। ये रचनाएँ अहसास दिलाती हैं कि स्त्रियाँ कोई पितृसत्तात्मक विचार या अवधारणा मात्र नहीं थीं, वे हाड़-माँस की एक जीवित प्राणी थीं। वे सोच सकती थीं, लिख सकती थीं, प्रश्न कर सकती थीं। अपनी पराधीन स्थिति पर, अपने लिए प्रतिकूल बना दिए गए सामाजिक वातावरण पर, अपनी जहालत पर और अपनी दोयम स्थिति पर। और अब जवाब देने की बारी हिंदू धर्म के प्रतिनिधित्व का दावा करने वालों की थी। ■

संदर्भ

1. 'स्त्री विलाप', पृ. 4
2. 'सीमंतनी उपदेश' ,पृ., 41-42
3. वही,
4. एंटोनियो ग्राम्शी, (1979), 'सांस्कृतिक और राजनीतिक चिंतन के बुनियादी सरोकार', (अनुवादक, कृष्णकांत मिश्र), ग्रंथ शिल्पी, दिल्ली, 2002; टॉम बॉटमोर, लॉरेन्स हैरिस, वी.जी. किरनैन एंड राल्फ़ मिलिबैंड (सम्पादक), 'अ डिक्शनरी आफ़ मार्क्सिस्ट थाट', ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयार्क, 1998; जर्डा लर्नर, 'द क्रिएशन आफ़ पैट्रियार्की', ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयार्क, 1887; वर्जीनिया वुल्फ़, 'अ रूम ऑफ़ वन्स ओन', पेंग्विन बुक्स, लंदन, 2004
5. कल्याण : नारी अंक, गीता प्रेस गोरखपुर, चौदहवाँ पुनर्मुद्रण, 2013; शाकम्बरी जयाल, 'द स्टेटस ऑफ वूमेन इन एपिक्स', मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1966; उमा चक्रवर्ती, 'जाति समाज में पितृसत्ता : नारीवादी नज़रिए से' (अनुवादक—विजय कुमार झा), ग्रंथ शिल्पी, 2011
6. सिल्विया फ़ेडेरिकी, 'कैलिबान एंड द विच : वूमेन, द बॉडी एंड प्राईमेटिव एक्यूम्यूलेशन', फ़्रोनेम, दिल्ली, 2013 : 181-189
7. उमा चक्रवर्ती, 'द वर्ल्ड ऑफ द भक्तिन इन साउथ एशिया—द बॉडी एंड बियोंड', मानुषी, जनवरी-जून, 1989 : 18-29; पूर्वा भारद्वाज, दिप्ता भोग, 'भय नाहीं खेद नाहीं : पण्डिता रमाबाई, निरंतर', दिल्ली, 2014; उमा चक्रवर्ती, 'रीराइटिंग हिस्ट्री : द लाइफ़ एंड टाइम्स ऑफ पण्डिता रमाबाई', ज़ुबान, दिल्ली, 2013; सुधीर चंद्र, 'एनस्लेव्ड डॉटर्स : कॉलोनियलिज़्म, लॉ एंड वीमेंस राइट्स', ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1998
8. रामविलास शर्मा, 'भारतेंदु युग और हिंदी भाषा की विकास परम्परा', राजकमल प्रकाशन, 1975, पृ. 28
9. अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी, 'समाचारपत्रों का इतिहास', ज्ञानमंडल, वाराणसी, 1986
10. हालाँकि, हरदेवी का लंदन जाना, अंग्रेज़ी पत्र-पत्रिकाओं के लिए एक महत्वपूर्ण ख़बर थी। 1886 के 'द इंडियन मैग्जीन' ने दादाभाई नौरोज़ी, रतनजी बनर्जी, लक्ष्मीनारायण तथा अपने भाई सेवाराम के परिवार के साथ, श्रीमती हरदेवी के लंदन जाने की ख़बर प्रकाशित की थी (पृ. 280); इसी पत्रिका में 'हिंदू लेडीज़' श्रीमती सेवाराम तथा श्रीमती हरदेवी के लंदन पहुँचने पर उनके स्वागत की भी ख़बर छपी थी। (पृ. 276); 'द इंडियन मैग्जीन', अंक 181-182, नेशनल इंडियन एसोसिएशन, लंदन, 1886
11. अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी, 'समाचारपत्रों का इतिहास', ज्ञानमंडल, वाराणसी, 1986, रामविलास शर्मा, 'भारतेंदु युग और

हिंदी भाषा की विकास परम्परा', राजकमल प्रकाशन, 1975, पृ. 28, डॉ. नगेंद्र, डॉ. हरदयाल, 'हिंदी साहित्य का इतिहास', मयूर पेपरबैक्स, 2013, पृ. 468, रस्साकशी, पृ. 198, उर्मिला गुप्ता, 'हिंदी कथा साहित्य के विकास में महिलाओं का योग', राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1966, पृ. 378-379, नीरजा माधव, 'हिंदी साहित्य का ओझल नारी इतिहास', (1857-1947), सामयिक बुक्स, दिल्ली, 2014, पृ. 74-79, लूसी कैरोल, 'द हिंदुस्तानी कायस्थ', पृ. 264

12. लंदन से लौटते ही हरदेवी ने स्त्रियों को संगठित करना शुरू कर दिया था। 'द टाइम्स ऑफ इंडिया' लिखता है कि हरदेवी ने लाहौर में अपने घर पर 150 पर्दानशीन महिलाओं की एक सभा आयोजित की थी जिसमें लेडी डफ़रिन को धन्यवाद ज्ञापित करने के साथ ही अन्य कई प्रस्ताव पास किए गए थे। 'द टाइम्स ऑफ इंडिया', 8 अक्टूबर, 1888
13. 'द टाइम्स ऑफ इंडिया', 12 मार्च, 1889
14. सीताराम सिंह, 'नेशनलिज़्म एंड सोशल रिफ़ोर्म इन इंडिया : 1885-1920', रंजीत प्रिंटर्स एंड पब्लिशर्स, पृ. 8, 93; राधा कुमार, 'द हिस्ट्री ऑफ डुईंग : एन इलस्ट्रेटेड अकाउंट ऑफ मूवमेंट फ़्राम वीमेंस राइट्स एंड फ़ेमिनिज़्म इन इंडिया', 1800-1900; श्रीमती हरदेवी (सम्पादिका), 'भारत भगिनी : स्त्री शिक्षा को समर्पित एक मासिक पत्रिका', लाहौर, जनवरी 1902
15. लूसी कैरोल ने स्वामी शिवज्ञान चाँद के 'धर्ममहोत्सव' में महिला श्रोताओं के बीच ब्रह्म समाजी श्रीमती हरदेवी के लेक्चर देने का ज़िक्र किया है। वहीं न्यूयार्क से छपने वाली पत्रिका 'मिशनरी लिंक' में श्रीमती हरदेवी रोशनलाल द्वारा बम्बई के एक सार्वजनिक हॉल में लेक्चर देने का ज़िक्र मिलता है। लेक्चर का विषय था "हिंदू विधवाओं की स्थिति, तथा इसमें सुधार के व्यावहारिक उपाय"। यही ख़बर दूसरी पत्रिकाओं में भी छपी थी। अन्य अवसरों पर भी श्रीमती हरदेवी के महिला श्रोताओं के बीच भाषण दिए जाने के उल्लेख मिलते हैं; द हिंदुस्तानी कायस्थाज़ : 'द कायस्थ पाठशाला एंड द कायस्थ कांफ्रेंस', 1873-1914, यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफ़ोर्निया, बर्कले, 1976, पृ. 208; 'द मिशनरी लिंक फ़ॉर द वूमेंस यूनियन मिशनरी सोसाइटी ऑफ अमेरिका फ़ॉर हिदेन लैंड्स', न्यूयार्क, अक्टूबर, 1902; 'द इंग्लिशवूमेंस रिव्यू ऑफ सोशल एंड इंडस्ट्रियल क्वेशचंस', वॉल्यूम 33, 1902, पृ. 272
16. श्रीमती हरदेवी लाहौर में लड़कियों के 'विक्टोरिया स्कूल' की प्रबंधन-समिति में थीं। इसी तरह 1889 में सूरत के 'रायचंद दीपचंद गर्ल्स स्कूल' के पुरस्कार वितरण समारोह में श्रीमती हरदेवी का उल्लेख मिलता है; 'द इंडियन मैग्जीन', अंक 229-240, 1890; 'द टाइम्स ऑफ इंडिया', 27 मार्च, 1889-
17. होम डिपार्टमेंट, 'गवर्नमेंट ऑफ इंडिया प्रोसीडिंग्स', सितम्बर 1908, नं. 49-58; श्रीमती हरदेवी, 'भारत भगिनी', 1902; ए.के. शुक्ला, 'वीमेन चीफ़ मिनिस्टर्स इन कंटेम्प्रेरी इंडिया', ए.पी.एच. पब्लिशिंग कारपोरेशन, दिल्ली, 2007-56
18. फ़्रांचेस्का ऑर्सीनी, 'हिंदी का लोकवृत्त 1920-1940 : राष्ट्रवाद के युग में भाषा और साहित्य', वाणी प्रकाशन, दिल्ली; फ़्रांचेस्का ऑर्सीनी ने अपने इस शोध प्रबंध में हिंदी साहित्येतिहास की इन प्रवृत्तियों पर विस्तार से विचार करते हुए हिंदी साहित्यिक क्षेत्र की समस्त विविधताओं को समेटने का प्रयास किया है, जिससे हिंदी के लोकवृत्त की एक समूची तस्वीर खींची जा सके।
19. देखें, 'हिंदी, नागरी और गोरक्षा', वीर भारत तलवार, 'रस्साकशी : 19 वीं सदी का नवजागरण और पश्चिमोत्तर प्रांत', सारांश प्रकाशन, दिल्ली, 2006; वसुधा डालमिया, 'द नेशनलाइज़ेशन ऑफ हिंदू ट्रेडिशंस : भारतेंदु हरिश्चंद्र एंड नाइनटीन्थ सेंचुरी बनारस, परमानेंट ब्लैक', दिल्ली, 2013
20. देखें, इतिहास का नायक, खलनायक और हिंदी की नयी चाल, 'रस्साकशी'।
21. 'हिंदी के आदि मुद्रित ग्रंथ', कृष्णाचार्य, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली।
22. 'स्त्री-कवि कौमुदी', ज्योति प्रसाद मिश्र 'निर्मल', संपादन, बलवंत कौर, अनन्य प्रकाशन, 2014, नीरजा माधव, 'हिंदी साहित्य का ओझल नारी इतिहास', (1857-1947), सामयिक बुक्स, दिल्ली, 2014, 'कलामे निस्वाँ', सम्पादन-पूर्वा भारद्वाज, निरंतर, उर्मिला गुप्ता, 'हिंदी कथा साहित्य के विकास में महिलाओं का योग', राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1966
23. रामचंद्र शुक्ल, 'हिंदी साहित्य का इतिहास', लोकभारती, इलाहाबाद।
24. जुर्गेन हैबरमास, 'द स्ट्रक्चरल ट्रान्सफ़ार्मेशन ऑफ द पब्लिक स्फीयर : ऐन इंक्वायरी इन्टू अ क्रिटिक ऑफ बुर्ज्वाइस सोसाइटी', पॉलिटी प्रेस, यू.के., 1994, पृ. 43-51
25. 'चारु गुप्ता, स्त्रीत्व से हिंदुत्व तक : औपनिवेशिक भारत में यौनिकता और साम्प्रदायिकता', राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2012, पृ. 133-151
26. वही, पृ.147
27. जुर्गेन हैबरमास, 'द स्ट्रक्चरल ट्रान्सफ़ार्मेशन ऑफ द बुर्ज्वाइस पब्लिक स्फीयर'; नैन्सी फ्रेज़र, 'रीथिंकिंग द पब्लिक स्फीयर : अ कंट्रिब्यूशन टू द क्रिटिक ऑफ एक्चुली एक्जिस्टिंग सोसाइटी', सोशल टेक्स्ट, नं. 25/66 (1990), ड्यूक यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ. 56-80
28. कन्हैयालाल, रायबहादुर, 'तारीख़-ए-लाहौर' (उर्दू), विक्टोरिया प्रेस, लाहौर, 1884; उर्दू में लिखी इस किताब को सही-सही पढ़ने में जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय में मध्यकालीन इतिहास के शोधार्थी जियाउल हक़ ने मेरी मदद की।
29. 'मिनट्स ऑफ प्रोसीडिंग्स ऑफ द इंस्टिट्यूशन ऑफ सिविल इंजीनियर्स विंड अदर सेलेक्टेड एंड एब्स्ट्रैक्ट पेपर्स', वॉल्यूम XCIV. , सम्पादक, जेम्स फ़ारेस्ट, लंदन, 1888, 313-317
30. वही,
31 वही,

32. सलमा महमूद, राय बहादुर कन्हैया लाल्स लाहौर इज गॉन फ़ॉरेवर (फ़्राइडे टाइम्स में प्रकाशित आलेख), http://lahorenama. wordpress.com>rai-b...
33. मिनट्स ऑफ प्रोसीडिंग्स ऑफ द इंस्टिट्यूशन ऑफ सिविल इंजीनियर्स।
34. आज की उर्दू
35. भूमिका, 'तारीख़-ए-लाहौर'
36. पंजाब के अख़बारों की इस रिपोर्ट में 'भारत भगिनी' की 1901-1905 तक के सर्कुलेशन का ब्योरा दिया है। यहाँ लिखा है— ''प्रोपराइटर : श्रीमती हरदेवी, कायस्थ, एज-42, डाटर ऑफ द लेट राय बहादुर कन्हैयालाल, एक्ज़ीक्यूटिव इंजीनियर, लाहौर, एंड वाइफ़ ऑफ रोशनलाल, बी.ए. बैरिस्टर-एट-लॉ (01), पब्लिशर इज हेमराज, खत्री, एज 34; द पंजाब प्रेस, 1880-1905, नार्मन जेरल्ड बैरियर, पॉल वेल्ज़, इश्यू 14 ऑफ ओकेजनल पेपर : साउथ एशिया सीरिज़, मिशिगन स्टेट यूनिवर्सिटी एशियन स्टडीज़ सेंटर, प्रकाशक—रिसर्च कमिटी ऑफ द पंजाब, 1970
37. 'हिंदू विडोज़ बाई वन ऑफ देम, रिटेन बाई अ यंग विडो, एंड ट्रांसलेटेड बाई एन इंग्लिश लेडी', जर्नल ऑफ द नेशनल इंडियन एसोसिएशन इन एड ऑफ सोशल प्रोग्रेस इन इंडिया, नं. 131, नवम्बर 1881, लंदन, सी. केगन पॉल एंड कम्पनी, पृ. 624-630
38. 'स्त्री विलाप', पृ. 10-12
39. 'सीमंतनी उपदेश', पृ. 99
40. ''श्रीमती हरदेवी ने ख़ुद को अपनी देशवासी बहनों की उन्नति के काम में लगा दिया और फिर ज़नाना में भेजने के लिए एक उपयोगी पत्रिका निकाली''; 'द इंडियन मैग्जीन एंड रिव्यू' 1892, पृ. 660; लूसी कैरोल ने 11 अगस्त 1894 के लाहौर ट्रिब्यून की एक ख़बर को आधार बना कर लिखा है, ''रोशनलाल और उनकी पत्नी शिक्षित और (देश दुनिया) घूमी हुई (ट्रैवल्ड) श्रीमती हरदेवी, दोनों ही स्त्री शिक्षा और मुक्ति के प्रसिद्ध कार्यकर्ता थे।''
41 देखें, 'भारत भगिनी', जनवरी 1902 का अंक।
42. लूसी कैरोल, 'द हिंदुस्तानी कायस्थ', पृ. 264
43. 'द इंडियन मैग्जीन एंड रिव्यू', इश्यू—229-240, 1890, पृ. 262; यहाँ पिछले महीने कलकत्ता में हरदेवी के भाई सेवाराम की आकस्मिक मृत्यु हो जाने की ख़बर छपी है, जो अभी-अभी बैरिस्टर बन कर इंग्लैण्ड से लौटे थे।
44. 'पंजाब पैट्रियट' के हवाले से 'द इंडियन मैग्जीन एंड रिव्यू' में हरदेवी के पुनर्विवाह की ख़बर 1892 में छप रही थी; 'द इंडियन मैग्जीन एंड रिव्यू', नं. 264, दिसम्बर, 1892, पृ. 660
45. लूसी कैरोल, 'द सीवॉयेज कंट्रोवर्सी एंड द कायस्थ ऑफ नार्थ इंडिया, 1901-1909', 'मॉडर्न एशियन स्टडीज़', वॉल्यूम 13, नं. 2, 1979, 265-299; बिशेन नारायण धर, 'कास्ट सिस्टम इन इंडिया' (लंदन की कार्लाईल सोसाइटी में पढ़ा गया एक पर्चा), लंदन, 1889, पृ. 11
46. सी.ए. बेली, 'द लोकल रूट्स ऑफ इंडियन पोलिटिक्स', क्लैरेंडन प्रेस, ऑक्सफ़ोर्ड, 1975, पृ. 116-117; हिंदुस्तानी (लखनऊ), 21 सितम्बर 1890, यू.पी.ऐन.ऐन.आर., 1890 (बेली की किताब में संदर्भित)
47. सरस्वती में ''पण्डित सरयू प्रसाद मिश्र'' शीर्षक से महावीर प्रसाद द्विवेदी ने एक आलेख लिखा, जिसमें ज़िक्र है, ''सहवास-सम्मति का क़ानून जिस समय बनने को था उस समय पण्डित जी ने लाला रोशनलाल बैरिस्टर की सलाह से धर्म्मशास्त्रानुयायी एक बहुत बड़ी पुस्तक इस विषय पर लिखी। प्रयाग में पंडित जी की पत्नी का शरीर-पात हुआ और भी कितने ही कष्ट इन्हें झेलने पड़े। इनकी जेठी पुत्रवधू 9 दिन के एक शिशु बालक को छोड़कर परलोक सिधारी। उसका पालन करने वाली और कोई कुटुम्बीय स्त्री घर में न थी। इससे पण्डित जी ने घबराकर उस बालक को लाला रोशनलाल की पत्नी श्रीमती हरदेवी को दे दिया। वह अब तक उन्हीं के पास लाहौर में है''; सरस्वती, अप्रैल 1908 में प्रकाशित, महावीर प्रसाद द्विवेदी रचनावली, पृ. 269
48. 'भारत भगिनी', जनवरी, 1902
49. होम पॉलिटिकल, उपरोक्त।
50. जानकी देवी बजाज, समर्पण और साधना : श्रीमती जानकी देवी बजाज के 80 वीं वर्षगाँठ के अवसर पर प्रणीत ग्रंथ, सम्पादकमण्डल—बनारसी दास चतुर्वेदी तथा अन्य, सम्पादक—भवानीप्रसाद मिश्र तथा यशपाल जैन, सस्ता साहित्य मण्डल, 1973
51. मनमोहन कौर, 'रोल ऑफ वीमेन इन द फ़्रीडम मूवमेंट', स्टर्लिंग, दिल्ली, 1968, पृ. 98
52. सत्यकेतु विद्यालंकार, हरिदत्त वेदालंकार, 'आर्य समाज का इतिहास', खंड-4, आर्य स्वाध्याय केंद्र, 1982, पृ. 384
53. 'वीमेन चीफ़ मिनिस्टर्स इन इंडिया', पृ. 56
54. श्रीमती हरदेवी, 'लंदन यात्रा', ओरिएंटल प्रेस, लाहौर, अगस्त 1888, भूमिका।
55. वही,
56. लंदन यात्रा ,104-107
57. स्थानीय बाज़ार
58. लंदन यात्रा,115-117
59. वही, भूमिका।
60. जे. के. रॉलिंग्स, 'हैरी पॉटर एंड द गॉब्लेट ऑफ फ़ायर', आर्थर ए. लेविन बुक्स, यू. एस. ए., 2000, पृ. 98-99
61. व्यंग्य चित्रावली, इलाहाबाद, 1930, साभार—चारु गुप्ता, ''स्त्रीत्व से हिंदुत्व तक''
62. श्रद्धाराम फ़िल्लौरी, (1880), भाग्यवती, ऋषभचरण जैन तथा संतति, दिल्ली, 1988, पृ. 82
63. बंग महिला, (1907), दुलाईवाली, बंग महिला ग्रंथावली, सम्पादक, सुधाकर पांडेय, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, सं. 2045 वि., पृ. 1-7
64. प्रेमचंद, (1925), दो सखियाँ, 'प्रेमचंद की सम्पूर्ण कहानियाँ', खंड-1, सुमित्र प्रकाशन, इलाहाबाद, 2010, पृ. 786-828

65. लंदन यात्रा, पृ. 4-6
66. श्रीमती हरदेवी, 'हुक्मदेवी : हिंदूधर्म की उच्चता में एक सच्ची कहानी', क्वीन प्रेस, इलाहाबाद, 1892
67. हुक्मदेवी, 62
68. श्रीमती हरदेवी, 'स्त्रियों पै सामाजिक अन्याय', क्वीन प्रेस, इलाहाबाद, 27 दिसम्बर सन 1892, पृ. 3
69. वही, पृ. 1
70. वही, पृ. 3
71. वही, पृ. 2
72. वही, पृ. 14
73. वही, पृ. 15
74. 'भारत भगिनी' का विज्ञापन, 'स्त्रियों पै सामाजिक अन्याय' के फ़्लैप पर।
75. 'द इंडियन मैग्जीन एंड रिव्यू', नं. 246 जून, 1891, पृ. 322
76. 'सीमंतनी उपदेश', 103
77. वही, 86
78. 'भारत भगिनी', जनवरी, 1902
79. 'सीमंतनी उपदेश', 61-62
80. 'लंदन यात्रा' पृ. 2
81. 'हुक्मदेवी'।
82. 'स्त्रियों पै सामाजिक अन्याय'।
83. इसके दूसरे अंक खोजने का प्रयास जारी है।
84. 'हिंदू विडोज़ बाई वन ऑफ देम', रिटेन बाई अ यंग विडो, एंड ट्रांसलेटेड बाई एन इंग्लिश लेडी, जर्नल ऑफ द नेशनल इंडियन एसोसिएशन इन एड ऑफ सोशल प्रोग्रेस इन इंडिया, नं. 131, नवम्बर 1881, लंदन, सी. केगन पॉल एंड कम्पनी, पृ. 624-630
85. 'भारत भगिनी', जनवरी 1902
86. सूज़ी थारू एवं के. ललिता (सम्पादक), 'वीमेन राईटिंग इन इंडिया : 600 बी. सी. टू द प्रेजेंट', वॉल्यूम 1, फ़ेमिनिस्ट प्रेस, न्यूयार्क, 1991, पृ. 356-363
87. पण्डिता रमाबाई सरस्वती (1887), 'द हाई कास्ट हिंदू वूमेन', तृतीय संस्करण, फ़िलाडेल्फ़िया, 1888, पृ. 87-89
88. 'सीमंतनी उपदेश', वाणी प्रकाशन।
89. वही, देखें 'सीमंतनी उपदेश' की मूल प्रति का छायाचित्र।
90. हिंदुओं में चार जातियाँ हैं, और मेरा ख़याल है तीसरी जाति, जो कायस्थ है, जिससे मैं आती हूँ, अपनी विधवाओं को सर्वाधिक कष्ट देते हैं''; 'हिंदू विडोज़—बाई वन ऑफ देम, जर्नल ऑफ द नेशनल इंडियन एसोसिएशन', नवम्बर 1881, पृ. 624
91. 'सीमंतनी उपदेश' पुस्तक से ''आर्य्या स्त्रियों की प्रार्थना'' को अंग्रेज़ी में अनुवादित कर के छापते समय पण्डिता रमाबाई ने लिखा था, ''यहाँ एक आजीवन दुःख भोगने के लिए अभिशप्त औरत की प्रार्थना (उद्धृत) है जो उसके अपने और उसकी बहनों के दुःख को मेरे किसी भी शब्द से बेहतर वर्णित करते हैं। यह ब्रिटिश ज़नाना मिशनरी की एक छात्रा ने लिखा था, उन थोड़ी सी हिंदू औरतों में से एक जो लिख और पढ़ सकती हैं, और जिसने बचपन से ही हिंदू विधवा जीवन के कड़वे दुखों और अपमान को झेला था''; 'द हाई कास्ट हिंदू वूमेन', पृ. 86
92. 'सीमंतनी उपदेश' पुस्तक से सूज़ी थारू एवं के. ललिता द्वारा 'एनोनिमस' शीर्षक के तहत संकलित इस भाषण का मिलान करके देखें।
93. 'रस्साकशी', पृ. 198
94. 'लंदन यात्रा', पृ. 10
95. 'द इंडियन मैग्जीन एंड रिव्यू', इश्यू 277-282, 1889, पृ. 162
96. 12 मार्च, 1889, 'द टाइम्स ऑफ इंडिया'।
97. 'द इंडियन मैग्जीन', 1889
98. 'द इंडियन मैग्जीन' के जून, 1891 अंक में कहा गया है कि हरदेवी इस पत्रिका के लिए लिखती रही हैं।
99. इसके लिए 'द इंडियन मैग्जीन एंड रिव्यू' के विभिन्न अंक देखें
100. 'सीमंतनी उपदेश', पृ. 63
101. वही, पृ. 43
102. वही, पृ. 77
103. वही,
104. 'स्त्रियों पै सामाजिक अन्याय', पृ. 3
105. 'सीमंतनी उपदेश', पृ. 63
106. 'स्त्रियों पै सामाजिक अन्याय', पृ. 1-2
107. 'सीमंतनी उपदेश', पृ. 70
108. 'हुक्मदेवी', पृ. 36-45
109. 'सीमंतनी उपदेश', पृ. 70
110. वही, पृ. 100
111. 'स्त्री विलाप अर्थात गड़बड़ स्मृति और बुढ़िया पुराण से बग़ैर मरजी ज़बरदस्ती का विवाह', जिसको इनकी सताई हुई एक महादुःखित विधवा ने रचा है, आर्य दर्पण प्रेस, शाहजहाँपुर में छपा, सन 1881
112. 'स्त्री विलाप', पृ. 9
113. 'सीमंतनी उपदेश', पृ. 63
114. 'स्त्री विलाप', पृ. 2
115. 'सीमंतनी उपदेश', पृ. 44-45
116. कैनेथ डब्ल्यू. जोंस, 'आर्य धर्म एंड हिंदू कानशसनेस इन नाइनटींथ सेंचुरी पंजाब', मनोहर, 1976, पृ. 314
117. 'स्त्री विलाप', 'सीमंतनी उपदेश' तथा 'लंदन यात्रा' : हर जगह लेखिका बड़े दुःख से लिखती है कि तर्क की हर एक बात पर वे बड़ी-बूढ़ियों द्वारा क्रिश्चयन ठहरा दी जाती हैं।
118. जर्दा लर्नर, 'प्लेसिंग वीमेन इन हिस्ट्री : डेफ़िनेशन्स एंड चैलेंजेज़, फ़ेमिनिस्ट स्टडीज़', वॉल्यूम 3, (ऑटम, 1975), पृ. 5-14